वर्तमान परिवेश और साहित्य की भूमिका

मानवीय अस्तित्व के लिए यह गहरे संकट का युग है। एक ओर विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रभाव से अभूतपूर्व भौतिक विकास हुआ है तो दूसरी ओर निजी स्वार्थ के लिए आपाधापी की प्रवृत्ति से मानवीय संवेदना का ह्रास खतरनाक हद तक पहुंच गया है। आए दिन होने वाली दर्दनाक घटनाएं, हिंसा और अत्याचार मनुष्य के लिए सूचना बन कर रह जाते हैं। न तो इन हादसों के जिम्मेदार व्यक्तियों के प्रति उसके मन में रोष उत्पन्न होता है और न पीड़ितों के प्रति हमदर्दी। वह इन सबका निरपेक्ष द्रष्टा बना हुआ है—यानी वह अपनी "सन्दहनी मौत" से बेखबर है। वह इन स्थितियों के लिए किसी घिनौनी राजनीति, मानवमन की किसी दुर्बलता या जमाने को दोष देकर अपना बौद्धिक समाधान कर लेता है और उसका प्रतिरोध करने में कतराता है। जड़ समाज की यह मानसिकता मनुष्य की अस्मिता के लिए एक बड़ी चुनौती है।

हमारे देश के वातावरण को दूषित करने के लिए सत्ता और अवसर की संवेदनाशून्य राजनीति खासतौर से जिम्मेदार है। राजनीति का अपराधीकरण हो रहा है और अपराध का राजनीतिकरण दोनों एक दूसरे के सहारे फल-फूल रहे हैं। पश्चिम के अनुकरण पर धर्म और राजनीति के संबंधों पर एक भद्दी बहस जारी है। धर्म जो अपने वास्तविक अर्थ में मानवमात्र की एकता और भाईचारे का संदेश देता है, "रिलीजन" या मजहब के रूप में प्रचारित होकर राजनीतिक स्वार्थ के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। कानून की सुविधानुसार व्याख्या और अवमानना इसी राजनीति की देन है। कानून में आस्था रखने की अपेक्षा आम नागरिक भी कानून तोड़ने के हौसले से अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा आंकता है। मूल्यहीनता के इस माहौल में जीवन-मूल्यों के प्रति अनास्था से प्रेम, भाईचारा और सहयोग के स्थान पर द्वेष, अलगाव और विवेकहीन संघर्ष की विनाशकारी प्रवृत्तियों का जोर है। हमारा देश विश्वव्यापी अमानवीयकरण के साथ आन्तरिक तनाव और अव्यवस्था के दौर से गुजर रहा है।

व्यंग्य

नाटक

कहानियाँ

कविताएँ / गीत / ग़ज़ल

पुस्तक-समीक्षा

आवरण .
चेतन 'सोपी', उदयपुर

(१

वर्तमान परिवेश और साहित्य की भूमिका

मानवीय अस्तित्व के लिए यह गहरे संकट का युग है। एक ओर विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रभाव से अभूतपूर्व भौतिक विकास हुआ है तो दूसरी ओर निजी स्वार्थ के लिए आपाधापी की प्रवृत्ति से मानवीय संवेदना का ह्रास खतरनाक हद तक पहुंच गया है। आए दिन होने वाली दर्दनाक घटनाएं, हिंसा और अत्याचार मनुष्य के लिए सूचना बन कर रह जाते हैं। न तो इन हादसों के जिम्मेदार व्यक्तियों के प्रति उसके मन में रोष उत्पन्न होता है और न पीड़ितों के प्रति हमदर्दी। वह इन सबका निरपेक्ष द्रष्टा बना हुआ है—यानी वह अपनी "अन्दरूनी मौत" से बेखबर है। वह इन स्थितियों के लिए किसी घिनौनी राजनीति, मानवमन की किसी दुर्बलता या जमाने को दोष देकर अपना बौद्धिक समाधान कर लेता है और उसका प्रतिरोध करने से कतराता है। जड़ समाज की यह मानसिकता मनुष्य की अस्मिता के लिए एक बड़ी चुनौती है।

हमारे देश के वातावरण को दूषित करने के लिए सत्ता और अवसर की संवेदनाशून्य राजनीति खासतौर से जिम्मेदार है। राजनीति का अपराधीकरण हो रहा है और अपराध का राजनीतिकरण दोनों एक दूसरे के सहारे फल-फूल रहे हैं। पश्चिम के अनुकरण पर धर्म और राजनीति के संबंधों पर एक भद्दी बहस जारी है। धर्म जो अपने वास्तविक अर्थ में मानवमात्र की एकता और भाईचारे का संदेश देता है, "रिलीजन" या मजहब के रूप में प्रचारित होकर राजनीतिक स्वार्थ के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। कानून की सुविधानुसार व्याख्या और अवमानना इसी राजनीति की देन है। कानून में आस्था रखने की अपेक्षा आम नागरिक भी कानून तोड़ने के हौसले से अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा आंकता है। मूल्यहीनता के इस माहौल में जीवन मूल्यों के प्रति अनास्था से प्रेम, भाईचारा और सहयोग के स्थान पर विवेकहीन संघर्ष की विनाशकारी प्रवृत्तियों का जोर है।
अमानवीयकरण के साथ आन्तरिक संत्रास और

मधुमती : अगस्त, १९९१

आज साहित्य का सबसे बड़ा काम मनुष्य की जड़ होती हुई संवेदना को जीवनरस से सींचना है । आदि कवि वाल्मीकि ने क्रौंच पक्षी के वध से उमड़ी करुणा को अपने काव्य का प्रेरक भाव बना कर साहित्य के इसी सरोकार को रेखांकित किया है । यह करुणा शिकारी के प्रति शापरूप गहरे क्रोध से सवलित होकर एक सुन्दर काव्य के रूप में प्रस्फुटित होती है । संवेदना से सहजानुभूति में रूपायित हुई करुणा और रोष के काव्य का यह एक उदाहरण है, जो हमारी सुप्त चेतना को झकझोरता है । साहित्य का मूल प्रयोजन मानव सामान्य अनुभूति में हलचल पैदा कर मनुष्य की चेतना को समृद्ध और विकसित करना है । साहित्य जिस समग्र सौंदर्य की अनुभूति से निरजा जाता है उसमें जड़, चेतन, प्रकृति मनुष्य, जाति, देश आदि के भेद विलीन हो जाते हैं । यदि रचना के स्तर पर भेद दिखाई देते हैं तो समझना चाहिए सृजन संश्लिष्ट और एकात्म नहीं है उसके भीतर दरारें हैं जो आस्वाद में बाधक हैं । प्रत्येक क्रान्तदर्शी कवि चराचर की एकता में विराट सौंदर्य को साकार होता हुआ देखता है --"समरस के जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था ।" इसी भावभूमि पर रचा गया साहित्य गहरे आध्यात्मिक अर्थ में सार्थक होता है ।

साहित्य के नाम से लिखी गई सभी रचनाएं जीवन में ऊर्जा का संचार नहीं करतीं । श्रेष्ठ सर्जक ही अपनी अन्तर्दृष्टि से यथार्थ को गहराई से पकड़ कर उस सच को उजागर करता है जिसमें जीवन की अनन्त संभावनाओं के दीप जगमगाते हैं । सृजन कोई बौद्धिक व्यसन नहीं है । यह एक कठिन साधना है, बेचैनी की आग में पिघल कर परिशोधित होने की एक अन्तर्वेदना है । जब सृजन व्यावसायिक होता है तो वह लक्ष्य भ्रष्ट हो जाता है । वैसे साहित्य का एक प्रयोजन अर्थप्राप्ति भी बताया गया है पर उसका स्थान यश के बाद था—"काव्य यश से अर्थकृते ।" आज स्थिति में विपर्यय दिखाई देता है । कभी कभी यश की आकांक्षा भी सस्ती लोकप्रियता के छलावे में भटक जाती है । समाज में रहने वाले साहित्यकार के बाहरी व्यक्तित्व पर जमाने की हवा का असर एक हद तक अपरिहार्य है । किन्तु यह सोचना ठीक नहीं होगा कि वह उसकी आन्तरिक चेतना को आक्रांत कर लेता है । यदि ऐसा होता हो तो परिवेश की जड़ता के विरुद्ध संघर्ष करने में रचनाकर्म की क्या सार्थकता रह जायेगी ? पिछले दिनों श्री नरेश मेहता के एक वक्तव्य के संदर्भ में हिन्दी के कुछ साहित्यकारों ने परिवेश और रचनाकर्म के रिश्ते पर अपने विचार व्यक्त किए थे । उनका अनुभव है कि रचना-धर्मिता के निर्वाह में किसी स्थान या परिवेश की भूमिका नगण्य है । ऐसी स्थिति में सृजन के लिए वर्तमान माहौल की अनुकूलता प्रतिकूलता पर कोई सार्थक बहस नहीं की जा सकती । वस्तुतः रचनाकर्म कमल की तरह कीचड़ के गर्भ से ऊपर उठकर अपना सौंदर्य बिखेरता है । साहित्य और समाज के प्रति जिम्मेदार साहित्यकार हर परिस्थिति में मानवता का पथ आलोकित करते हैं ।

मीडिया के प्रति बढ़ती लोकप्रियता के कारण साहित्य के माध्यम से संप्रेषण

आज एक चुनौती भरा कार्य हो गया है। पत्र-पत्रिकाओं में छपने वाले साहित्य के पाठकों की संख्या बढ़ रही है और गंभीर साहित्य के पाठक कम हो रहे हैं। दूरदर्शन ने तो सभी स्तर के पाठकों को अपने सम्मोहन की गिरफ्त में ले लिया है। दूरदर्शन कार्यक्रम को प्रभावी बनाने की दृष्टि से गठित की गई समिति के अध्यक्ष डॉ. पी. सी. जोशी कहते हैं—"मैं भी टेलीविजन देखने का आदी हो गया हूं। पहले मुझे किताब पढ़े बिना नींद नहीं आती थी। आजकल मेरा बहुत सारा समय टेलीविजन देखने में जाता है। वैसे दूरदर्शन और साहित्य संप्रेषण की दो स्वतन्त्र विधाएं जिनका अपना-२ अनुशासन है और इसीलिए उनकी परस्पर तुलना असंगत है। पर उपभोक्ता संस्कृति के प्रचार माध्यम के रूप में वह वस्तु और उपभोग के प्रति बेतहाशा आकर्षण बढ़ाकर मनुष्य को संवेदनाशून्य बनाता जा रहा है। आर्थिक विकास के नाम पर भोगवादी संस्कृति के प्रसार से उन मूल्यों के लिए संकट खड़ा हो गया है जो मानव समाज के अस्तित्व और विकास के लिए आवश्यक हैं। इसी बिन्दु पर दूरदर्शन साहित्य के लिए एक चुनौती है। आज साहित्य का धर्म मनुष्य को वस्तु (जड़) होने से बचाकर मनुष्यता की रक्षा करना है। साहित्य के पक्ष में यह बात महत्वपूर्ण है कि दूरदर्शन की अपेक्षा उसका प्रभाव मानव मन पर गहरा और स्थायी होता है।

डॉ. राधेश्याम शर्मा

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

प्रमुख-प्रवृत्तियां

- ग्रन्थ प्रकाशन।
- मधुमती पत्रिका प्रकाशन, कृतिकार प्रस्तुति प्रकाशन, मनक प्रकाशन।
- साहित्यिक समारोहों का आयोजन विशेषतः आंचलिक साहित्यकार समा
  लेखक शिविर, उपनिषद् सेमिनार, परिसंवाद, सम्मान समारोह, व्याख्यानमा
  सृजनतीप, लेखक सम्मेलन, अन्तर्प्रान्तीय साहित्यकार बन्धुत्व यात्रा, युवा ले
  शिविर, साहित्यकार सृजनसाक्षात्कार आदि।
- पुरस्कार
- प्रदेश के साहित्यकारों को मनीषी व विशिष्ट साहित्यकार के रूप में सम
  करना।
- लेखकों के निजी व्यय से प्रकाशित ग्रन्थों पर आर्थिक सहयोग।
- प्रदेश की साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं, संस्थाओं को आर्थिक सहयोग।
- राज्य की साहित्यिक संस्थाओं को सम्बद्ध व मान्य करना।
- नवोदित तथा युवा लेखकों को प्रोत्साहन।
- शोध सन्दर्भ केन्द्र, पुस्तकालय-वाचनालय का संचालन।
- साहित्य के प्रचार के लिए प्रदर्शनियों का आयोजन तथा पुस्तक मेलों में भागीदा
- पांडुलिपि प्रकाशन सहयोग योजनान्तर्गत आर्थिक सहयोग।
- विशिष्ट लेखन प्रायोजनाओं पर फैलोशिप प्रदान करना।
- साहित्यकार प्रोत्साहन एवं कल्याण योजनान्तर्गत साहित्यकारों को आर्थिक सहयो
  चिकित्सा एवं अभावग्रस्त सहयोग तथा केन्द्रीय आर्थिक सहयोग।
- साहित्यकारों की वाणी-संग्रहीकरण (टेप लाइब्रेरी)।
- पाठक मंच आदि।

कबीर का व्यंग्य-सन्दर्भ

डॉ. प्रद्युम्न प्रसाद

सन्त कबीर मध्यकालीन भारत के क्रान्तिकारी चिन्तक और कवि थे। उनके सर्वस्पर्शी निर्भीक सन्त व्यक्तित्व और मर्मस्पर्शी चुटीली वाणी का प्रभाव बंगाल से पंजाब तक तथा पंजाब से गुजरात तक अनुभूत होता है। हिन्दी में भक्ति काव्य का प्रारम्भ इसी सत व्यक्तित्व की अन्तःप्रेरणा से उद्भूत शब्दों से होता है। इस सन्त व्यक्तित्व की रचना गृहस्थ योगी बुनकर समुदाय के धर्मान्तरित मुस्लिम जुलाहा परिवार में हुई थी। नाथपंथी बुनकर निम्नवर्गीय पीड़ा से आकुल था। इस्लाम को अपनाने के बाद भी इसकी निम्नवर्गीय पीड़ा दूर नहीं हो सकी। कोरी-ताँती से जुलाहा हो जाने पर भी दीन-हीन ही रहा। इस अनुभूति ने उन्हें दीन-हीन समुदाय या विशाल जन समाज की ओर उन्मुख कर दिया। पर वे स्वयं दीनता-हीनता की स्थिति से कुंठित नहीं थे। सन्त-प्रज्ञा, सत्संग, चिन्तन एवं भक्तिभावना के कारण हीन ग्रंथि से मुक्त थे। तभी तो वे साहस और आत्मविश्वास के साथ कहते हैं—

(क) जाति जुलाहा मति को धीर। हरषि हरषि गुन रमै कबीर।

(ख) तू ब्राह्मन मैं काशी का जुलाहा।

उन्हें रामानन्द ने चेताया था। उस युग के महान आचार्य एवं रामभक्ति के दीक्षागुरु रामानन्द ने काशी के पंचगंगा घाट पर कबीर को रामभक्ति का मंत्र दिया था। जिज्ञासु और आर्त्त किशोर कबीर को आधार मिल गया था। इसी आधार पर उन्होंने आत्मबल और चरित्रबल की रचना की थी। तभी तो कह उठते हैं—'दास कबीर जतन से ओढ़ि, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया ॥' वे एक तरफ दास हैं। निम्नवर्गीय होने के कारण दास नहीं हैं। आत्मनिवेदित भक्त होने के कारण दास हैं। इसीलिए तो वे दूसरे स्थान पर कहते हैं—

> कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउँ।
> गलै राम की जेवड़ी, जित खैंचे तित जाउँ ॥

यह निरीह सरलता, विनम्रता एव समर्पण का चरम रूप है। दूसरी तरफ परम-विश्वास एव स्वाभिमान के साथ घोषणा करते हैं कि उन्होंने परमात्मा से मिली चादर याने जिन्दगी को यत्नपूर्वक ओढ़ा है (जिया है) और उसी रूप में बेदाग चादर को लौटा दिया है। सुर, नर और मुनियों ने इसे तो दागदार बना दिया है। सचमुच आचरण की शुद्धता याने शुद्ध सात्विक जीवन ही सन्त व भक्त व्यक्तित्व की कसौटी है। पशुवृत्तियों का उन्नयन ही तो धर्मसाधना है–भक्तिसाधना है। इसी अर्थ में कबीर करघे के स्वर में अपना स्वर मिलाकर अपनी साधना को व्यक्त करते हैं। जुलाहा का काम नहीं छोड़ते। शिष्यों से दान दक्षिणा नहीं लेते। शुद्ध श्रम और निरीह राम-भक्ति उनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ हैं।

पन्द्रहवीं सदी शर्की और लोदी खानदान के शासन की सदी है। शेरशाह और अकबर का उदार शासनकाल नहीं था। सिकन्दर लोदी का कट्टर और कठोर व्यक्तित्व सन्त के जीवन के उत्तरार्द्ध में उभर आया था। वे भी काफिर घोषित हो चुके थे। काशी तो शैव एव शाक्त पण्डितों की केन्द्रस्थली रही है। वे निम्नवर्ग के प्रति अनुदार थे। फलत नाथपथी बुनकर गृहस्थ नये मजहब में आ गये थे। इसी विषम परिवेश में कबीर का जिज्ञासु और आर्त्त व्यक्तित्व आकुल हो उठा था। उदार हृदय आचार्य रामानन्द से भक्ति का मंत्र मिला। कबीर ने उत्तर भारत में भक्ति को प्रस्तुत किया। साथ ही काशी के पुरोहित और मुल्ला को, इनके हर पाखण्ड को, सामाजिक विषमता और जातिवाद को अपने व्यग्य का शिकार बनाया। उस सदी मे–कठोर मुस्लिम राजतंत्र और पंडितों की नगरी काशी मे सन्त द्वारा आलोचना आश्चर्यजनक लगती है। यह एक अविश्वसनीय प्रसग है। पर विश्वास करना पड़ता है। सन्त के साहस, निर्भीकता, तर्क और चुटीली भाषा पर आश्चर्य के साथ विश्वास करना पड़ता है। ऐसा नहीं है कि उन्होंने केवल रूढ़िवादी और अनुदार पुरोहित वर्ग और क्रूर-कट्टर मुल्ला वर्ग की आलोचना की थी। उन्होंने उस युग के भारत के वैयक्तिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन के पतन को निकट से देखा और महसूस किया था। ढोंग, पाखड और जर्जर रूढ़ियों के बन्धन को समझा था। इसलिए उनमे आक्रोश जगा था। यह आक्रोश सात्विक था क्योंकि रचनात्मक था। उत्थान की भावना से युक्त था। वैयक्तिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन की नवरचना से अनुप्राणित था। यह आक्रोश व्यग्य के रूप मे प्रकट हुआ। अत इस व्यंग्य का सामाजिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक मूल्य है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में कबीर के चिन्तन एव पंथ के तत्वों एव सूत्रों पर विचार करते हुए लिखा है—"उन्होंने भारतीय ब्रह्मवाद के साथ सूफियों के भावात्मक रहस्यवाद, हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद और वैष्णवों के अहिंसावाद तथा प्रपत्तिवाद का मेल करके अपना पथ खड़ा किया।" तात्पर्य यह है कि कबीर के पूर्वज नाथपथी बुनकर थे। इसलिए उनमें साधनात्मक

रहस्यवाद विद्यमान था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "जोगी नामक आश्रमभ्रष्ट घरबारियों की एक नाथपंथी जाति में निराकार भाव की उपासना प्रचलित थी। इनमें जातिभेद और ब्राह्मण श्रेष्ठता के प्रति सहानुभूति नहीं थी और न अवतारवाद में ही कोई आस्था थी।" (कबीर–पृष्ठ २६)। इस्लाम में आ जाने के बाद ऐसे परिवार को निराकार भाव की ही उपासना मिली। पर कबीर ने इस्लाम के सूफी प्रेम मार्ग के तत्व को अपनाया-निराकार उपासना के साथ। आचार्य रामानन्द से अद्वैतवाद और ब्रह्मवाद के साथ रामभक्ति मिली। साथ ही वैष्णवों की अहिंसा एवं प्रपत्ति ने इस ब्रह्मचिंतन एवं भक्ति को लोकोन्मुख एवं मानवीय बना दिया। जैसे आधुनिक युग में स्वामी विवेकानन्द ने अद्वैतवाद को लोकोन्मुख एवं मानवीय बनाया। पर विवेकानन्द ने पौराणिकता, अवतारवाद एवं मन्दिर–तीर्थ को सम्पूर्ण शुद्ध रूप में अपनाया। कबीर नहीं अपना सके थे क्योंकि नाथपंथी बुनकर की पूर्व पृष्ठभूमि और तत्कालीन सूफी मत की दृष्टि ने ऐसा नहीं होने दिया। वृहत्तर वैदिक-पौराणिक समाज की सामाजिक विषमता तथा पंडित पुरोहित वर्ग की अनुदारता ने भी ऐसा नहीं होने दिया। यह कबीरदास की सीमा है।

सन्त ने पूरे रूप में इस्लाम को नहीं अपनाया। इसलिए शहंशाह सिकन्दर शाह लोदी उन पर रुष्ट हुआ। उन्हें गंगा में फेंक कर दण्डित करने का प्रयास किया। पर वे भयग्रस्त युग में भयभीत नहीं हुए थे। उन्होंने आचार्य रामानन्द से दीक्षा लेने पर भी पूरे रूप में वैदिक-पौराणिक धर्म को नहीं अपनाया। पर वे भारतीय ब्रह्मवाद, रामभक्ति, अहिंसा, सदाचार और भारतीयजन को हृदय से अपनाकर साधनापथ पर बढ़े थे। पंडित-पुरोहित वर्ग ने असहमति व्यक्त की थी। दोनों की असहमति चिन्तन और अभिव्यक्ति के स्तर पर थी–परम्परा के अनुकूल। प्रमाण है कि कबीर ने सगुण की आलोचना की थी। *प्रतिमा-पूजन पर व्यंग्य किया था। निर्गुण और सगुण का* द्वन्द्व उस युग का द्वन्द्व बन गया था। इसीलिए सूरदास और नन्ददास ने तर्क एवं माधुर्य के आधार पर 'भ्रमरगीत' में निर्गुण की आलोचना की। विनोद-व्यंग्य किया। तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में सगुण रामभक्ति का प्रतिपादन बाल काण्ड तथा उत्तर काण्ड में किया। कबीर ने दशरथपुत्र राम को ब्रह्म नहीं माना तो तुलसी ने दशरथपुत्र राम को ही अवतार मान कर भक्ति की। और उनके चरित्र का गायन किया। कबीर ने सगुणवादी के 'पाखण्ड' की आलोचना की है तो तुलसी ने निर्गुण-वादी की।

कबीरदास निर्भीकता और विनम्रता के साथ आलोचना और निन्दा को स्वीकार करने के लिए कह रहे थे। कारण यह है कि उनकी आलोचना मानवजीवन की अन्त: बाह्य शुचिता के लिए थी। उनका व्यंग्य मानवस्वभाव को निर्मल करने के लिए व्यक्त हो रहा था। उनकी निन्दा निन्दारस के आनन्द के लिए नहीं थी। उनकी दृष्टि में परनिन्दा पाप है। उनकी निन्दा निर्मल होने की भावना है। अब आलोचना-

जिस साधना के स्तर पर आ जाती है तो साहित्य की मूर्ति बन जाती है। इसी
ये कहते हैं—

निंदक नियरे राखिये आंगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करे सुभाय॥

इसी भावना के साथ वे रचना के पथ पर अग्रसर होते हैं। उन्होंने उस युग में देख
कि धर्मसाधना आडम्बर की साधना बन गयी है। अतः परमात्मा को पाने में ढ
ढूंढ़ना और भटकना मूर्खता है। इसलिए वे आत्मविश्वास के साथ कहते हैं—

ज्यों नैनन में पूतरी यों मालिक घट माहि।
मूरख लोग न जानहीं बाहर ढूंढन जाहि॥

वे काशी और प्रयाग में हजारों तीर्थवासियों को देख रहे थे। उनकी भटकन
समझ रहे थे। उनके कष्ट को महसूस कर रहे थे। उनकी दृष्टि में यह मन
उन्होंने निकट से तन्त्रमन्त्र के जाल को देखा था। उनकी समझ में मनुष्य अज्ञा
तन्त्रमन्त्र में विश्वास करता था। भ्रम में पड़ा रहता था। उन्होंने तन्त्र-मन्त्र को मि
माना है। सबको चेतावनी दी है।

तन्त्र मन्त्र सब झूठ हैं मत भरमो जग कोय।
सार शब्द जाने बिना कागा हंस न होय॥

यह सच है कि कबीर ग्रंथों-पोथियों का अध्ययन नहीं कर सके थे। पुस्त
ज्ञान से कोरे थे। शास्त्रों का ज्ञान नहीं था। पर पुस्तकीय ज्ञान के दावेदा
अहंकार के साथ अपने ज्ञान का प्रदर्शन करते थे। वह ज्ञान साधनाशून्य प्रदर्शन
था। कबीर ने मात्र सत्संग से ज्ञान पाया था। वे अन्तःप्रज्ञा, सत्संग एवं भक्ति
ज्ञानी के चरमबिन्दु तक पहुंच गये थे। अतः पुस्तकीय ज्ञान और प्रज्ञा व सत्सं
प्राप्त ज्ञान का द्वन्द्व उपस्थित था। पंडित इन्हें अज्ञानी समझ रहे थे। कबीर
मात्र कागदी-व्यवहारी जीव मान रहे थे। शास्त्रों के ज्ञानी को कागदी जीव मा
व्यंग्य गर्भित था। कारण है कि आत्मदृष्टि को कागज पर उतार देना कठिन है।

कागद लिखै सो कागदी की व्योहारी जीव।
आतम दृष्टि कहा लिखै जित देखै तित पीव॥

उन्होंने महसूस किया था कि शास्त्र-पुराण पोथी पढ़ने वाले ज्ञान की बात कर स
हैं, पर प्रेम एवं भक्ति को हृदय में स्थान नहीं दे सकते। ढाई आखर-प्रेम उ
अहंग्रस्त अन्तःकरण में जग नहीं पाता। ये खोखले ज्ञानी हैं। संवेदनाशून्य
पोथियों के अध्ययन का क्या मूल्य रह जाता है? प्रेमभाव ही ज्ञान की भूमि
मात्र ढाई आखर के उन्मेष की अपेक्षा है— पोथियों का पाण्डित्य नहीं। इसीलि
घोषणा करते हैं—

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥

कबीर ने ऐसी प्रेमानुभूति के लिए पुस्तकीय ज्ञान को आवश्यक नहीं माना है। पर अहं के विसर्जन को अनिवार्य माना है। अहं के विसर्जन के बाद ही प्रेम सम्भव है। जाति, वर्ण और कुल के अहंकार को खोकर राम से प्रेम व भक्ति हो सकती है। कामी, क्रोधी, लालची और वर्णजाति के अभिमानी से भक्ति सम्भव नहीं है। पर वे चारों तरफ कामी, क्रोधी, लोभी तथा अभिमानी ही देखते हैं। वे क्षुब्ध होते हैं। वे फटकारते हैं—

> कामी, क्रोधी, लालची इनतें भक्ति न होय ।
> भक्ति करै कोई सूरमा जाति बरन कुल खोय ।।

सन्त ने देखा है कि अधिक लोग सत्य की साधना और धनसंग्रह में कोई अंतर नहीं मानते। उनकी दृष्टि में अर्थ और काम के प्रति आसक्ति माया बन्धन है। अर्थ-लोभ माया में बंधना है। पर तथाकथित भक्त अर्थ-लोभ में बंधे रहते हैं। दुविधा में पड़े रहते हैं। केवल सत्य की साधना कठिन लगती है। ऐसे द्वन्द्वग्रस्त न राम को पा सकते हैं और न माया को। कबीर ने इस दुविधा और द्वन्द्व के यथार्थ को व्यक्त किया है, व्यंग्य किया है—

> सत्त नाम कड़वा लगै मीठा लागै दाम ।
> दुविधा मे दोऊ गए माया मिली न राम ।।

इस द्वन्द्व से कथनी और करनी का अन्तर सामने आ जाता है। केवल प्रवचनोपदेश हर युग का यथार्थ है। कबीर ने ऐसे उपदेशकों पर तीखा व्यंग्य किया है। खोखले उपदेश से कोई न ज्ञानी बन सकता है और न महान्। अज्ञानी ही कर्म और आचरण न कर केवल उपदेश देता है। यह ढोंग है, पाखण्ड है।

> करनी बिन कथनी कथै अज्ञानी दिनरात ।
> कूकर ज्यों भूकत फिरै सुनी सुनाई बात ।।

कबीर ने सन्त दृष्टि से मानव जीवन के आहार-विहार की सात्विकता पर बल प्रदान किया है। वे चारों तरफ देखते हैं कि मदिरा का प्रवाह है। नशाखोरी बढ़ रही है। मादकता में विवेक नष्ट हो रहा है। गोरस विक्रेता गली-गली घूम रहे हैं। गोरस की महत्ता कम हो गयी है। मदिरा मद बरसा रही है। वे क्षुब्ध होकर कहते हैं—

> साँचे कोई न पतीजई, झूठे जग पतियाय ।
> गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि बिकाय ।।

उन्होंने शुद्ध सात्विक जीवन के लिए मांसाहार की भी कटु आलोचना की है। हिन्दू और मुसलमान दोनों के मांसाहार पर व्यंग्य किया है। यह व्यंग्य मर्मान्तिक है। बड़ी निर्भीकता से प्रहार किया है। कबीर का यथार्थबोध और मर्मान्तिक व्यंग्य आज भी प्रासंगिक है। इस दृष्टि से मध्यकाल और आधुनिककाल में क्या अन्तर आया है ? वे व्यंग्य करते हैं—

मधुमती : अगस्त, १९९३

लोकप्रिय कविता और कविता की लोकप्रियता

कमलाप्रसाद चौरसिया

चिन्ता स्वाभाविक है, कविता अपनी लोकप्रियता खो रही है। कविता को पाठक नहीं मिल रहे हैं। कविता के विचार को समझने की लोगो को फुरसत नही। कविता समाज को प्रभावित करे तो कैसे करे ? कवि की बात लोगो तक पहुचे तो कैसे पहुचे ? कवि सम्मेलनों मे जरूर श्रोता आते हैं लेकिन कविता को उतनी प्रतिष्ठा और वाहवाही नही मिलती जितनी चुटकुलेबाजो को मिलती है, गला भाँजों को मिलती है। कविता अच्छी होती है तो लोग सुनने के पहले ही तालियां बजाने लगते हैं जैसे हूट कर रहे हों। कवि मच पर आ ही डटता है तो मुर्दनी छा जाती है। सुनने की तो बात दूर, वह ऐसे मौके में तब्दील हो जाता है जब श्रोताओं को बातचीत के आदान-प्रदान के लिए जरूरी समय, मध्यान्तर हो गया हो। उसके जाते ही जोरदार तालियां बजती है जैसे महत्वपूर्ण वह चुकने के बाद धन्यवाद की पात्रता देना जरूरी हो और फिर दुबारा न आने की सलाह दी जा रही हो। बड़ी दयनीय स्थिति है कविता की ! वह लोकप्रिय क्यो नहीं हो रही है ? प्रश्न है कि क्या लोकप्रिय कविता कुछ और है ?

सच पूछा जाय तो कविता कविता है। गीत भी कविता है, नवगीत भी, ग़ज़ल भी। छन्दबद्ध हो जाने से कविता गीत नहीं हो जाती। फिर भी गीतकारों मे और कवियों में अनबन है तो मतलब साफ है कि गीतकार मंच को जय करने में समर्थ रहे हैं, कवि असमर्थ। अपने विजयशील न हो पाने की ही शायद प्रतिक्रिया है कि कवियो को, नये कवियो को अपनी समीक्षा किसी अन्य कवि से और उसकी समीक्षा स्वय करना पड़ी। कहना पड़ेगा कविता मे दरार उसी समय से पड़ गई जब कवि समीक्षक स्वय बन बैठे और कहने लगे कि कविता पाठको और श्रोताओं की मोहताज नही। कविता को समझने के लिये पाठक और श्रोता को भी एक स्तर का होना

बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल ।
जो बकरी को खात है ताको कौन हवाल ।।
दिन को रोजा रहत है रात हनत है गाय ।
यह तो खून वह बंदगी कहु क्यों खुसी खुदाय ।।

उस युग मे गैर मुस्लिमों के लिए काफिर शब्द का प्रचलन हो गया था। काफिर घृणा एव दण्ड के योग्य था। इससे जन समाज में नफरत और दुराव का बढ़ाव हो रहा था। कवि कबीर की क्रान्तिकारी चेतना ने काफिर के अर्थ को बदलने की कोशिश की। समाज से घृणा और दुराव के भाव को दूर करने का प्रयत्न किया। 'काफिर' शब्द आज भी विवादास्पद बना हुआ है। द्रष्टा कवि ने इस शब्द की अमानवीय अर्थवत्ता को देख लिया था। अतः वे कहते है—

कबिरा सोई पीर है जो जानें पर पीर।
जो पर पीर न जानई सो काफिर बेपीर ।।

अर्थात् साधु (पीर) में परपीड़ा के प्रति सहानुभूति होगी। जिसमे परपीड़ा की अनुभूति नहीं होगी, वही निष्ठुर काफिर है। काफिर का अर्थ गैर मुस्लिम नहीं है।

खेद का विषय है कि युग द्रष्टा कबीर को समझने की कोशिश नहीं हुई। पर उनके कथन की प्रासंगिकता बनी हुई है।

◻

निवेदन

पत्र-व्यवहार में ग्राहक संख्या का
उल्लेख अवश्य कीजिये।

लोकप्रिय कविता और कविता की लोकप्रियता

कमलाप्रसाद चौरसिया

चिन्ता स्वाभाविक है, कविता अपनी लोकप्रियता खो रही है। कविता को पाठक नही मिल रहे हैं। कविता के विचार को समझने की लोगो को फुरसत नही। कविता समाज को प्रभावित करे तो कैसे करे ? कवि की बात लोगो तक पहुचे तो कैसे पहुचे ? कवि सम्मेलनों में जरूर श्रोता आते हैं लेकिन कविता को उतनी प्रतिष्ठा और वाहवाही नही मिलती जितनी चुटकुलेबाजो को मिलती है, गला भाँजों को मिलती है। कविता खड़ी होती है तो लोग सुनने के पहले ही तालिया बजाने लगते हैं जैसे हूट कर रहे हो। कवि मच पर आ ही टटता है तो मुर्दनी छा जाती है। सुनने की तो बात दूर, वह ऐसे मौके में तब्दील हो जाता है जब श्रोताओं को बातचीत के आदान-प्रदान के लिए जरूरी समय, मध्यान्तर हो गया हो। उसके जाते ही जोरदार तालिया बजती है जैसे महत्वपूर्ण कह चुकने के बाद धन्यवाद की पात्रता देना जरूरी हो और फिर दुबारा न आने की सलाह दी जा रही हो। बड़ी दयनीय स्थिति है कविता की ! वह लोकप्रिय क्यो नही हो रही है ? प्रश्न है कि क्या लोकप्रिय कविता कुछ और है ?

सच पूछा जाय तो कविता कविता है। गीत भी कविता है, नवगीत भी, ग़ज़ल भी। छन्दबद्ध हो जाने से कविता गीत नहीं हो जाती। फिर भी गीतकारो मे और कवियों में अनबन है तो मतलब साफ है कि गीतकार मच को जय करने में समर्थ रहे हैं, कवि असमर्थ। अपने विजयशील न हो पाने की ही शायद प्रतिक्रिया है कि कवियो को, नये कवियो को अपनी समीक्षा किसी अन्य कवि से और उसकी समीक्षा स्वय करना पड़ी। कहना पड़ेगा कविता में दरार उसी समय से पड़ गई जब कवि समीक्षक स्वय बन बैठे और कहने लगे कि कविता पाठकों और श्रोताओ की मोहताज नही। कविता को समझने के लिये पाठक और श्रोता को भी एक स्तर का होना

चाहिये। कविता के लिये पाठकीय और श्रोताओं का संस्कार होना चाहिये। इस प्रयास में उसने अपना एक घरौंदा बना लिया और घरौंदयाऊ हो गई। इस घरौंदे से बाहर झाँकने की उसे मोहलत ही नहीं दी गई। कारण बताया गया कि समय की जटिल संवेदना को जटिल भाषा-संस्कार चाहिये। जटिलता को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिये नये बिम्ब, प्रतिमान और काव्य-मूल्य उभरकर सामने आ रहे है, उन्हें समझने की, समय के साथ सभ्य होने की तमीज पाठक और श्रोता में उपजाने की जरूरत है।

जहाँ-तहाँ दूकानों पर वाक्य देखा जाता है कि ग्राहक कभी गलत नहीं होता। ग्राहकी बढ़ाने के लिये ग्राहक की जरूरत और मानसिकता का ख्याल रखना पड़ेगा। वह समय की पकड़ नहीं जो ग्राहक की जरूरत को नहीं पहचानती। ग्राहकी, वह भी अभूतपूर्व, नये अथवा अप्रत्याशित माल को बढ़ाने के लिये जिस तरह विज्ञापनबाजी की जरूरत होती है, लहकाकर, लटके दिखाकर, आधुनिकता का लोभ दिखाकर ग्राहकी पैदा की जाती है, वह कविता में नहीं हो सकती। कविता में विज्ञापनबाजी, पोस्टरबाजी नाचा और स्वांग का पर्याय तो हो सकता है जो एक वर्ग को शौकिया ग्राहक बना सकता है लेकिन आम और गम्भीर के बीच बाजार नहीं बनाया जा सकता। कविता के लिये बाजार की जरूरत है, यह लोकप्रिय कविता की माँग से सुस्पष्ट है। समस्या है—कविता लोकप्रिय कैसे हो?

उत्तरछायावाद तक गीत का ही प्राधान्य रहा। गीत ने गले को ही नहीं, भाव को भी गाया और बजाया है। यह कहना बेमानी होगा कि गीतकारों ने कलकण्ठ से श्रोता को मोहा, श्रोता गीत से मीत नहीं पाये या गीत में बात का अभाव होता है। वीरगाथाकाल, रीतिकाल, भक्तिकाल और छायावाद की गीतप्रधान कविता गेयता बरकरार रखते हुए विचार-गर्भ थी। उसने लोगों को उदकाया, उकसाया, राह दिखाई और माहौल बनाया। यह कहना कविता का मखौल उड़ाना होगा कि भाट और चारण कविता को कविता नहीं रहने देते। भाट और चारण राजा और प्रजा दोनों की जरूरत को पहचानते थे। उन्होंने जनरुचि का काव्य ही नहीं रचा, जनचेतना और जनाधार का काव्य भी रचा। काव्य में व्यंग्य की सृष्टि कर वे अपनी बात, राजा की [illegible] करते रहे तो दूसरी ओर प्रजा में धिक्कार के रूप में मनुष्यता को [illegible] वाले क्रिया-कलापों का [illegible] प्रस्तुत करते रहे। छायावाद ने मन को जितना जिया, समय को जितना प्रस्तुत किया, अन्तर्वेदना की जितनी व्याख्या व्यक्त की, वह हिन्दी साहित्य का कोई भी काल नहीं कर सका।

नव युग आया तो वीरगाथाकाल जन-जागरण और जन मानस का काव्यकाल रहा है। उसने लोगों को जगाया भी, उत्साहित भी किया। राजा की प्रशंसा भी की। प्रशंसा के बहाने जन की समस्याओं को प्रस्तुत किया और प्रशंसा के बूते जन-समस्याओं का निदान करवाया। वीरगाथाकाल की कविता जनाधार को नहीं नकारती। वह प्रशस्ति की तो बात करती है किन्तु वैयक्तिक प्रशस्ति की। जन में

वह कहीं नहीं हुई। इसके विपरीत रीतिकाल की कविता अपने चमत्कार के कारण विलास की ओर उन्मुख रही जिसमें मनोरंजन और चमत्कार दोनों ही मुख्य रहे लेकिन फिर भी कविता में जन को नहीं छोड़ा। वह अपनी लोकप्रियता नहीं खो गई। छायावाद की कविता या पूरी तरह राष्ट्रीय चेतना की कविता है जिसने जनाधार बनाया ही नहीं उसे भाषा और नया स्वरूप प्रदान करने की चेष्टा की। छायावाद ने कविता को आह्वान और उद्बोधन दिये। पर उनका मन भी आधार रहा। इनमें लोकप्रियता नहीं आई। निराला ने कविता को छन्दमुक्त कर दिया। कविता में तब भी मन नहीं छोड़ा था। छन्दमुक्ति सा नहीं थी हुई वह। हाँ, छन्द की मुक्ति को कविता ने कवियों के लिए सस्ती गद्य-रचना और श्रम से मुक्ति समझ मान लिया। छन्दमुक्त कविता जन-रुचि का ही नहीं, काव्योचित गरिमा का परित्याग कर गद्यात्मक हो गई। गद्यात्मकता ने उसकी भावात्मकता छीन ली और वह लोकप्रियता से दूर हटती गई। अब स्थिति यह है कि वह लोकप्रियता के लिए तरस रही है। इधर गीत ने हिन्दी में आकर उसे फिर लोकप्रियता की ओर मोड़ा। वह अब जन से जुड़ रही है और जोड़ रही है। लोगों का आग्रह बन रहा है कि छन्द की ओट अब छोड़ी नहीं जा सकती। कविता का पुनर्जीवन छन्द ही कर सकता है।

लोकप्रियता का रेखांकन करते हुए गम्भीर और चिन्तक दोनों प्रकार के रचनाकार और चिन्तक यह मानते हैं और प्रमाणित हाल है कि मंच से प्रसारित होने वाली चुटकुला कविता, मुक्त और हास्यापद भावाओं पर अपनी छाप छोड़ते हैं और लोकप्रियता हासिल कर रहे हैं। इसका अर्थ स्पष्ट है कि जनता अभी भी शब्द को पहचानती है। कविता में अपने शब्द को की जाती है अर्थ की अथवा राग की नहीं। शब्द महत्वपूर्ण होता है। कविता में शब्द की स्थापना महत्वपूर्ण है। चाहे वीरगाथा-काल रहा हो, चाहे रीतिकाल, भक्तिकाल रहा हो या आधुनिककाल शब्द के बिना कविता लोकप्रिय नहीं हो सकी। तुलसी, मीरा, सूर, कबीर आदि ने समय की सीमायें लांघी, इसका सीधा तात्पर्य यह है कि उन्होंने शब्द का ब्रह्म की तरह साधा। उनका शब्द एक ओर जन के संताप का बाधक है तो दूसरी ओर जन के लिए संताप-मुक्ति का माध्यम और शरणस्थल।

लोकप्रियता का तात्पर्य हल्केपन से नहीं है। जो मंचीय चुटकुलेबाजी या कविसम्मेलनीय रसात्मकता को लोकप्रियता का निकष मानते हैं वे सम्पूर्ण कविता की अनदेखी कर रहे हैं, शब्द की अवमानना कर रहे हैं। लोकप्रियता लोक में प्रिय होने वाला गुण है, किसी समूह विशेष या प्रबुद्ध में मान्य होने को लोकप्रियता नहीं कहते। जरूरी नहीं कि लोकप्रिय सर्वमान्य हो लेकिन लोक उसे सराहे और संवेदित हो यह जरूरी है। लोकप्रियता का सीधा अर्थ जन में बसने से है। लोकप्रिय आम-खास में सुरसुरी नहीं पैदा करता, उसमें रमता और रक्त में पैठ बनाता है। मंच से कही जाने वाली व्यंग्य-विनोद और हास्य उदकाने वाली कविता जन को रोमांचित

और विरेचित तो करती ही है, लोकप्रियता के मानदण्ड भी निधारती है। वह ऐसी कविता को न हल्का समझने को विवश करती है, न उसमें काव्यात्मकता का निषेध घोषित करती है। वस्तुतः व्यंग्य-विनोद और हास्य लोकप्रियता के मानदण्ड प्रभावित करते हैं। व्यंग्य-विनोद और हास्य विचारशून्यता का नहीं, विचारगर्भिता का प्राधान्य संसूचित करते हैं तो दूसरी ओर कविता में रीति का महत्व स्थापित करते हैं। 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहकर रीति, काव्यकौशल को ही काव्य में महत्व दिया गया है। वस्तुत. शब्द अपने अर्थ, चमत्कार और घातकता के लिये अपने प्रयोग पर निर्भर करता है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ इसका उदाहरण हैं जो सदियों से अपने शब्द-प्रयोग के कारण विचित्र अर्थ के सवाहक हैं। लोकरुचि में अपना स्थान बनाकर लोगों को अपने व्यापक अभिप्राय को सक्षेप में व्यक्त करने के कारण कण्ठाग्र होते चले आ रहे हैं, आने वाली पीढ़ियों तक कण्ठाग्र होते चले जायेंगे।

कविता लोकप्रिय नहीं हो पा रही है, तो इसका मतलब यह नहीं कि वह गंभीर है और आम आदमी गभीरता को अगीकार करने के पक्ष में नहीं है। कविता लोकप्रिय नहीं है तो इसका अर्थ यह है कि कविता में शब्द का इस्तेमाल सस्ते और हल्के ढंग से किया गया है, कवि-कर्म को गभीरता से नहीं लिया जा रहा है। उसमें शब्द अपनी भावसंप्रेषणशक्ति, आब और लोच को बरकरार नहीं रख पाया है। आज की कविता में बात बहुत स्पष्ट है कि कविता में कवि का श्रम झलकता ही नहीं। आज कविता को बहुत ही सहज कर्म समझ लिया जाता है और जो भी चाहे कविता करने लगता है। कविता करने के पूर्व पूर्ववर्ती कवियों को पढ़ना, शब्द प्रयोग से अभिज्ञ होना और शब्द और शब्दार्थ को विभिन्न भगिमाओं से सवेदित होना होता है। कविता गद्य नहीं कि जैसा है, वैसा कह दिया जाय। कविता शब्द-प्रयोग है जो जैसा है, उसको वैसा ही सप्रेषित करने के लिये शब्द में ध्वनि का आविष्कार करती है, व्यजनधर्मिता भरती, कटुतम को निष्ठुरतापूर्वक कहती है लेकिन कटुता का विस्तार नहीं करती।

वस्तुत. ध्वनि चित्त को एकाग्र करती है। एकाग्र चित्तता के माध्यम से वह उसे बाधती और रक्त में समा जाती है। रक्त के साथ भ्रमण करते हुए वह उसके अवचेतन में बसती है और लम्बे समय तक मथती, उत्तेजित करती और समय असमय उचित सदर्भ आने पर अपनी अर्थ-गर्भिता से सवेदित करती है। जो ध्वनि जन में जितने गहरे पैठ बना लेती है, वह उतनी ही प्रभावकारी और लोकप्रिय होती है। कविता में इसीलिये ध्वनि महत्वपूर्ण होती है। छन्द कविता को राग प्रदान करता है जो जन को आकृष्ट करता है लेकिन छन्द में विचार को शब्द देने वाली ध्वनि जन को एकाग्र करती है। अत. लोकप्रिय वही होता है जो विचार का तो सवाहक है ही, विचार को पूरे तोल में, शब्दों के ऐसे प्रयोग में व्यक्त करता है कि उनसे निसृत होती ध्वनि विचार का आभामण्डल बन जाती है। श्रोता भाषा को देखता ही नहीं रहता,

भाषा को अपनी स्मृति में बसा लेता है। अतः शब्द साधना कवि के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। छन्द शब्द-साधना को कसता है, शब्द की और कवि की परीक्षा लेता है। यहीं कविता गद्य से अलग होती है। वह अमूर्त और सक्षिप्त होती है। जरूरी नहीं कि छन्द मात्रिक, वर्णिक अथवा पद-चरण वाला ही हो। छन्द ध्वनि सयोजन और शब्द-निसार की प्रक्रिया है जो भाव को उसकी सम्पूर्ण भव्यता के साथ अधिकतम सकोच और संक्षेप मे व्यक्त करता है। निराला के बाद छन्दमुक्त काव्य रचना मे प्रवृत्त कवियो ने जो लोकप्रियता हासिल की, वह कविता मे शब्द-प्रयोग के कारण ही। कहिये कि उन्होने कविता को गभीर कर्म माना और कविता मे शब्द की पूजा की, शब्द के एकार्थीपन को तत्त्व ही नहीं किया, उसे शाखाओ-प्रशाखाओ मे अनेकार्थी होकर बिखरने के लिये विवश किया, उसमे चमत्कार, श्लेषत्व और अन्योक्तिपरकता मौजित की। अज्ञेय, मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर, धूमिल आदि ने नयी कविता में भी ध्वनि सयोजन के माध्यम से, हाइफन, विराम-अर्द्ध विराम के उचित प्रयोग से छन्द विकसित करने की कोशिश की जहा शब्द मे ध्वन्यात्मकता उभरकर सामने आई। उनका काव्य लोकप्रिय है।

दुष्यन्तकुमार की हिन्दी ग़ज़लो की लोकप्रियता ने हिन्दी काव्य को नया मोड दिया। कवि ग़ज़लों की ओर तेजी से आकृष्ट हुए। जिस तरह तेजी से कविता के छन्दमुक्त होते ही कविकर्म मे प्रवृत्त हुए थे, उसी तरह जब कमोबेश सभी रचनाकार ग़ज़ल मे अपना हाथ आजमाने लगे है। यह एक तरह से हिन्दी कविता के लिये शुभ ही है। इसे कविता में छन्द की वापसी की सज्ञा दी जा सकती है। छन्द में शब्द-भण्डार की ही नहीं, ज्ञान-भण्डार की भी आवश्यकता होती है। इसी बहाने आने वाले कवि, होनहार कवि अपने वरिष्ठ कवियो को पढ़ेंगे और गायेंगे। एक परम्परा की शुरुआत तो होगी। महत्वपूर्ण यह है कि इसी बहाने कवि अपने सास्कृतिक परिवेश को आत्मसात् करने के लिये विवश होंगे।

कहने की आवश्यकता नहीं कि तुलसी, सूर कबीर ने दूर की कौडी ढूंढने की कोशिश नहीं की। आज की कविता की तरह एकमेवाद्वितीय सवेदन को कथ्य बनाने की कोशिश नहीं की। आज की कविता सामान्य को जटिल बनाने की कोशिश करती है जबकि लोकप्रिय कवि जटिल को सामान्य बनाने की कोशिश करता है। जटिलतम की सामान्यतम अभिव्यक्ति श्रोता और पाठक को चमत्कृत ही नहीं करती, कवि के श्रम, सूझ और कौशल का लोहा भी मनवाती है। लोहा मनवाने के इस शिल्प विधान का ही परिणाम है कवि का लोकप्रिय होना। लोकप्रिय कविता का चलन मे आना अथवा लोकप्रिय होना दोनो एक-दूसरे के पर्याय है जो कविता में लोक-ग्राह्य शिल्प और संवेदना की माग करते है। लोकचित्त में जो पौराणिक, पारम्परिक और लौकिक रागात्मक सवेदन है, उसका प्रयोग यदि कविता मे किया जाता है तो वह लोकचित्त को अधिक प्रभावित और संवेदित करता है। कर्ण, दुर्योधन, द्रोपदी, सीता,

कैकेयी, कुन्ती, एकलव्य, द्रोण आदि पौराणिक पात्रों को लेकर जो संरचनायें की ग
उनने जन को सिर्फ इसीलिये उद्वेलित किया कि उनकी एक छवि श्रोता और पाठ
के पास पहले से थी। कवि की अपनी उकेर ने उसे रूप ही नहीं दिया, नये अर्थ
सवलित किया है जो समय की मांग और उसके सोच के साचे मे पूरी तरह समवि
हो जाता है। अपारम्परिक, नव्यतम और अश्लील किन्तु ठेठ-लठैत प्रयोग वितृष्ण
जगाते हैं और ऐसे प्रयोग सम्पूर्ण काव्य को पाठकीय सहानुभूति से हीन करते हैं
अरुचिविधायक होते हैं, क्लिष्ट और अन्यमनस्क प्रयोग विद्रूपता में अभिवृद्धि करते हैं
ऐसा काव्य लोकप्रिय नही हो सकता। कहना न होगा कि आज की कविता
सौमनस्य का अभाव है ही, अन्यमनस्कता का एकाधिकार है। फलत वह जन की
रुचि, रग और मानसिकता में अपनी पैठ नही बना पाती और दूर-दूर रहने अथवा
दुत्कारे जाने की नियति मे जीने के लिये विवश है।

❑

कविता का मर्म

कुन्दन माली

काव्यालोचना के परिप्रेक्ष्य मे रह-रह कर उठने वाले प्रश्न "कविता ही क्यो ?" का उत्तर पलट कर यों भी दिया जा सकता है कि कविता क्यो नही ? लेकिन इस पेचीदे प्रश्न का इतना सा उत्तर कदाचित् पर्याप्त नही है। कविता को लेकर हमारे यहा समय-समय पर अनेक चर्चाए चली हैं, बहस होती रही है। अतएव कविता की प्रकृति और कविकर्म के सन्दर्भ मे यहां कुछ विचार किया जाना समीचीन प्रतीत होता है।

कविता और मनुष्य का चिरन्तन सम्बन्ध सृष्टि के प्रारम्भ से ही रहा है। मानवीय अनुभवो और अनुभूतियों की सहज अभिव्यक्ति कविता के माध्यम से ही होती है। सो इतना आसानी से कहा जा सकता है कि जन्म-मरण, क्रोध-प्रेम तथा अन्य मानवीय-प्रवृत्तियों के समान कविता भी मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्ति है। चूंकि मनुष्य स्वभाव से सवेदनशील होता है और सवेदना के अभाव मे कविता भी सभव नही होती, इसलिये मनुष्य और कविता के सतत् सम्बन्ध की बात की पुष्टि होती है। मनुष्य से मनुष्य का जुड़ाव, मनुष्य की प्रकृति मे आत्मीयता तथा मनुष्य की समाज से अन्तरंगता के सदर्भ मे कविता निश्चिततौर पर अपनी भूमिका का निर्वाह करती है।

मनुष्य के मनुष्य से बेहतर सम्बन्ध को कविता ही निरूपित और पुनर्परिभाषित करती है। एक वृहत्तर समाज की सरचना मे मनुष्य के कर्त्तव्य और सामाजिक दायित्व को यह सटीक ढग से रेखांकित करती है। कविता को मानवीय अस्मिता की स्वतन्त्रता का पर्याय भी माना जा सकता है। कर्म विचलन और विवेकच्युति के समय यही मनुष्य का मार्गप्रशस्त करती है। यहा तक कि कविता मनुष्य को उसकी रूढ़िगत जड़ता तथा उसकी अपूर्णता के बारे मे भी बताती है। यह मनुष्य की सबसे बडी सहचर मानी जाती है क्योकि अतत जीवन का रास्ता ही कविता का रास्ता है। हर प्रकार के शोषण, अत्याचार तथा दमन के विरुद्ध अपनी आवाज को मुखर करने के

लिये मनुष्य जिस विधा को चुनता है वह कविता ही है। वह मनुष्य को अन्याय के विरुद्ध खड़ा होने का साहस प्रदान करती है। इसीलिये कहा जाता है कि विकट परिस्थितियों में मनुष्य कविता का ही सहारा लेता है।

जीवन की अनबूझ पहेलियों को सुलझाने तथा संस्कृति की बारहखड़ी को पढ़ने-समझने की सामर्थ्य हमें कविता से ही मिलती है। अन्य साहित्य-विधाओं से वह अलग और विशिष्ट विधा है तो इसके ठोस कारण हैं। विश्व दिनों-दिन राजनैतिक छल-प्रपंच से भरता जा रहा है और न्याय-व्यवस्था की विश्वसनीयता भी संदिग्ध होती जा रही है। यहां तक कि न्याय के द्वारे जाकर कोई अपनी पीड़ा व्यक्त करना चाहे तो भी नहीं कर सकता। राजनैतिक विश्व का अपना अलग शब्दकोश है जिसमें शब्दों के अर्थ मनमाने ढंग से स्थिर कर लिये गये हैं। कविता शब्दकोश से बाहर होती है। उसका हर शब्द बाहर खुले में कांपता रहता है—इसलिये कविता पीड़ा के पड़ोस में उद्घाटित होती है, वहीं वास करती है। कविता शब्दों के शूलों पर प्रतिपल विचलित होती देह है जो देह में ही बहती है, वे किसी भी भाषा के शब्द हों जो कविता में आ जाते हैं, स्थिर कभी नहीं रह पाते, इसीलिये कविता सबकी समझ में आ जाती है। राजनीति सबकी समझ में नहीं आती। जिस प्रकार एक देह में बसा हुआ मन जान-पहचान के बिना भी देह में बसे हुए मन से मिल जाता है, ठीक उसी प्रकार से कविता भी जीवन में घुल जाती है।

कविता को यद्यपि वैयक्तिक अभिव्यक्ति कहा जाता है किन्तु वैयक्तिक वह तभी तक रहती है जब तक उसे लिख न लिया जाये। एक बार शब्दांकित हो जाने के बाद कवि का वैयक्तिक अनुभव निर्वैयक्तिक बन जाता है। मनुष्य के निजी, अंतरंग अनुभवों को सामाजिक अनुभवों में परिणत कर देने की सामर्थ्य कविता में सर्वाधिक होती है। भारतीय-साहित्य-परम्परा में आज तक सबसे अधिक विमर्श और चिंतन काव्य को लेकर ही हुआ है।

विश्व-साहित्य की जो विभूतियां हुई हैं उनमें अधिकतर ने काव्य के साथ-साथ सर्जन की अन्य विधाओं को भी समृद्ध किया है। इस संदर्भ में स्पेंसर, शेक्सपियर, ड्राइडन, पोप, मिल्टन, जॉनसन इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि ये सभी रचनाकार मूलतः कवि ही रहे हैं और इस बात को इन्होंने स्वयं भी स्वीकार किया है। एलियट ने नाटक और आलोचना भी लिखी और समाज-दर्शन पर भी लिखा। किन्तु उनकी ख्याति कवि के रूप में कदापि कम करके नहीं आंकी गई। साहित्य का नोबेल पुरस्कार भी उनको कविता पर प्रदान किया गया।

रवीन्द्रनाथ टैगोर को विश्व में कवि के रूप में ही ख्याति मिली, यद्यपि उनका कथा-साहित्य कम महत्व का नहीं है। ठीक यही बात भारतेन्दु और निराला के बारे में लागू होती है और प्रसाद के संदर्भ में भी। कविता वह सर्वव्यापक विधा है जो कि

प्रतिभा तथा अभ्यास के बल पर अन्य विधाओं से आगे निकल जाती है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण है कि कविता में जो सघनता, गहनता और वैविध्य होता है वह अन्य सर्जनात्मक विधाओं में अपेक्षाकृत कम ही मिलता है।

शिक्षात्मक-अनुरंजन के साथ-साथ, कविता उच्चतम सांस्कृतिक मूल्यों की स्थापना में भी योगदान करती है। दर्शन तथा इतिहास से कविता को उत्कृष्ट इसीलिये माना गया है कि कविता में उक्त दोनों अनुशासनों का समावेश होता है तथा कवि पाठक को मानसिक स्तर पर प्रभावित-विचलित करने की क्षमता रखता है जबकि एक दार्शनिक तथा इतिहासकार नहीं। शैली की मान्यता है कि कविता परिकल्पनाओं की अभिव्यक्ति है और वह कि मानवदृष्टि जितनी प्रखीन है उतनी ही कविता भी। कवि अपने सृजन में न केवल भाषा, संगीत तथा वास्तुकला का सृष्टा होता है वरन् वह विधान-सम्मत-सुसरकारित समाज का आधार स्तंभ भी होता है। वह वर्तमान में भविष्य-दर्शन का संवाहक होता है और उसके विचारों के परिणामस्वरूप ही समाज में वैचारिकता का नवीकरण संभव होता है।

अपने काव्य-चिन्तन के अन्तर्गत मैथ्यू आर्नोल्ड ने तो यहां तक माना है कि जैसे-जैसे सभ्यता और संस्कृति का विकास होता जायेगा, वैसे-वैसे मानवता यह मानने को विवश होगी कि जीवन की व्याख्या करने के लिये, कविता के अतिरिक्त कोई और विकल्प उनके पास नहीं है। कविता के बिना हमारा विज्ञान भी अधूरा अपूर्ण रहेगा। एक समय ऐसा आयेगा जबकि धर्म तथा दर्शन का स्थान भी कविता ही ले लेगी। यूरोप के संदर्भ में देखें तो विश्वयुद्धोत्तर साहित्य में वहां 'एब्सर्ड' नाटकों का जो प्रचलन हुआ उसे कुल मिलाकर कविता का ही आधुनिक स्वरूप माना जा सकता है।

भारतीय काव्य-परम्परा अत्यन्त प्राचीन तथा समृद्ध रही है। छायावाद का दौर कविता का स्वर्णिम काल रहा है। किन्तु सत्तर व अस्सी दशकों में साहित्य-चर्चा तथा आलोचना के परिक्षेत्र में कविता के बारे में अनेक विरोधाभासी, अविश्वसनीय तथा चौंका देने वाली बातें सामने आने लगीं। कविता के औचित्य पर प्रश्नचिन्ह लगे, उसकी प्रासंगिकता समाप्त हो जाने की घोषणा भी कुछ विद्वानों ने की। स्थिति यहां तक आ गई कि कविता को उसके सम्यक् परिप्रेक्ष्य में समझने-परखने वाले आलोचक कम रह गये और कविता को कोने में धकेलने को आतुर तथाकथित काव्य-धुरंधरों की गहमा-गहमी मच गई। कविता की उनकी समझ और आलोचनाकर्म का उनका दायित्वबोध, दोनों ही संदिग्ध कहे जा सकते हैं। इसके चलते काव्यालोचना में स्वरपतवार का परिदृश्य दिखाई देने लगा।

काव्य-चिन्तन की इसी मानसिकता के कारण पत्र-पत्रिकाओं में कविता की हालत पर काफी अरण्य-रोदन किया गया। कुछ दिलचस्प शीर्षक दिखाई देने लगे यथा-*क्या कविता की वापसी संभव है? कविता हाशिये पर क्यों? क्या कविता अब भी* प्रासंगिक है? और क्या कविता अपना पुराना वैभव प्राप्त कर सकेगी? इत्यादि।

इससे ऐसा प्रतीत होने लगा कि कविता वाङ्मय में कहीं खो गई है जिसे खोजने की आवश्यकता है, कविता कोई ऐसी वस्तु है जो निश्चित स्थान से सरक कर कोने में चली गई है अतएव उसे यथास्थान स्थापित करना जरूरी है और यह भी कि कविता एक घुटा-पिटा साम्राज्य है जिसे फिर से प्रतिष्ठापित किये जाने की आवश्यकता है।

कविता के विस्थापन, पराभव तथा लुप्त होते जाने के जो कारण तथा तर्क उक्त सुधी आलोचकों (?) ने दिये हैं, उनके सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि कविता में स्थूल यथार्थ का चित्रण निरन्तर परिवर्तनशील समाज की प्रवृत्तियों के कारण ही हुआ है। निरन्तर क्षरणशील समाज का कोई भी कविता साक्षात् स्वर्ग के दर्शन नहीं करा सकती। यथार्थ अगर कटु है वह कुछ सीमा तक कविता में भी प्रतिबिम्बित होगा। सामाजिक संरचना में जो हलचलें होती हैं, उसका कुछ न कुछ असर भी कविता में आयेगा ही। पश्चिमी साहित्य का अन्धानुकरण करने का जो आरोप हमारी कविता पर लगाया जा रहा है वह नितांत निराधार है। इस तर्क में भी कोई दम नहीं है कि विद्रूप यथार्थ की नग्न सच्चाइयों के कारण कविता अपने मूल प्रयोजन से भटक गई है। इस तर्क को मानने का अर्थ होगा कवियों की समर्थ, वरिष्ठ तथा युवा पीढ़ी की कविता को सिरे से ही खारिज कर देना। हमारी काव्य परम्परा में गंभीर जीवन-दर्शन का अभाव नहीं रहा है। जैसा जीवन होगा वैसे ही अनुभव होंगे और संवेदना। मनुष्य-समाज में निरन्तर घटती जा रही संवेदना सम्प्रेषण की प्रवृत्ति को कविता में किये जाने वाले काव्य प्रयोग से सम्बद्ध करके देखा जा सकता है। कविता में यदि समय और समाज की नब्ज नहीं धड़कती तो फिर उस कविता का औचित्य ही क्या रह जाता है? कविता की सर्जनात्मकता का यह स्वभाव ही है कि वह हमेशा कसौटियों और प्रतिमानों से आँख-मिचौनी खेलते हुए अपना रास्ता गढ़ लेती है।

वर्तमान दौर की कविता में स्थायित्व भी है और काव्य-कथ्य भी। उसमें अनुभूतिजन्य सघनता भी है और भाषागत सौंदर्यशीलता भी। चूंकि कविता वहीं है जहां उसका निश्चित स्थान है, तब उसकी वापसी का सवाल भी बेमानी ठहरता है। पत्र-पत्रिकाओं में आज भी प्रकाशनार्थ कविताएँ ही सर्वाधिक आती है और प्रकाशित होती हैं, अतएव यह आक्षेप निराधार है कि कविता की रचनाशीलता हाशिये पर है। प्रत्येक वर्ष जो पुस्तकें छपती हैं उनमें कविता की पुस्तकें लगभग सत्तर प्रतिशत होती हैं।

कविता का एकमात्र प्रयोजन यद्यपि धनार्जन करना ही नहीं है लेकिन इस बात को रेखांकित किया जा सकता है कि सार्थक, गंभीर एवं जीवन सम्पृक्त कविता प्रत्येक युग में समादृत होती आई है। विभिन्न अकादमियों तथा साहित्यिक संस्थाओं द्वारा जिन रचनाओं को पुरस्कृत किया जाता है उनमें आधे से अधिक कृतियां कविता की ही होती हैं। इसमें कुछ भी आकस्मिक या अकारण नहीं है। इससे यह निष्कर्ष

ी मान्यता से निकाला जा सकता है कि जिस प्रकार विश्व में मनुष्य-जीवन ही एकमात्र केन्द्रीय सत्य है, ठीक उसी प्रकार सर्जन के क्षेत्र में कविता ही केन्द्रीय विधा है।

कविता मसखरेबाजी, मशक्कत या बलप्रदर्शन की वस्तु हर्गिज नहीं होती बल्कि उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध मनुष्य की कोमल संवेदनाओं तथा मनोभावों से होता है, अतएव इसको कथित दुर्दशा (?) पर किसी की सांत्वना अथवा सहानुभूति की आवश्यकता नहीं है। कविता निर्बल का बल है। अन्याय, दमन तथा शोषण का उसमें प्रतिकार होता है। अतः उसकी सत्ता भी स्वतः प्रतिष्ठित होती है। कविता को कला के तौर पर स्वायत्त भी इसीलिये माना गया है। कविता को अनेकानेक शाब्दिक मुहावरों और पहेलियों में उलझा कर स्वयं को गौरवान्वित महसूस करना किसी भी दृष्टिकोण से श्रेयस्कर नहीं कहा जा सकता।

कविता ही क्यों? इस प्रश्न का उत्तर यों भी दिया जा सकता है कि मनुष्य को जन्म से जो संस्कार प्राप्त होते हैं, काव्य संस्कार भी उनमें से एक होता है। ये संस्कार ही अंततः संस्कृति के स्वरूप को निरूपित करते हैं, इसलिये मनुष्य जीवन और संस्कृति से कविता को अलग करके नहीं देखा जा सकता। मनुष्य के संस्कार उसके *लिये दायित्व भी है और धर्म भी। जब तक सृष्टि में मनुष्य रहेगा, उसकी संवेदना* रहेगी, तब तक कविता भी रहेगी।

जीवन में कविता की महत् मौजूदगी की एक ठोस वजह यह भी है कि मनुष्य जो कुछ भी खो बैठता है, वह सम्पदा उसे कविता ही दोबारा लौटाती है, शब्द रूप में। दरअसल चीजें अस्तित्व में आती ही इसलिये हैं कि उनके शब्द आते हैं चीजें नहीं रहतीं उनके शब्द फिर भी रह जाते हैं। उन्हीं शब्दों में वे फिर प्राप्त हो जाती हैं। कविता इसीलिये पुनर्वसु है।

कविता चूंकि स्वयं में आदमी की चिंता करती है तथा उसके अहित के प्रति सचेत करती है इसलिये समकालीन-सृजन में कविता का स्थान अक्षुण्ण है। कविता तमाम मानवविरोधी शक्तियों के खिलाफ मुखरित होती है। अतएव कविता के प्रति किसी भी प्रकार का नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाना अंततः जीवन की आचार-संहिता के ही खिलाफ जाता है।

यह एक निर्विवाद सत्य है कि समकालीन कविता का जो उत्कृष्ट भाग है वह कमोबेश शहर से दूर ग्रामीण तथा कस्बाई अंचलों में रहने वाले, धनलिप्सा से दूर रह कर सृजनरत रहने वाले अल्पपरिचित कवियों की लेखनी से ही रचा जा रहा है। मानवीय संवेदनाओं, सहानुभूति, करुणा और भावना के कोने अतरे अभी भी हमारे देहातों-कस्बों में हरे-भरे हैं। केवल बड़े शहरों तथा महानगरों में कविता की हालत को देखकर किसी टिप्पणी, मंतव्य या तर्क का सार्वजनिकरण या सामान्यीकरण कर

देना किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं माना जा सकता ।

कविता को उसके रूप पर आंक कर कविता के इन पूर्व आलोचकों [illegible]
चाहिये कि वे अपने काव्य चिन्तन को अधिक विस्तार दें और चिन्तन करें। कवि[illegible]
प्रति सजगता नहीं उनकी सबसे बड़ी सेवा होगी ।

□

'मधुमती' के रचनाकारों से निवेदन

0 'मधुमती' मासिकी हेतु आपकी मौलिक अप्रकाशित साहित्यिक रचनाओं[illegible]
स्वागत है । रचना टाईप की हुई या सुलिखित, सुपाठ्य, प्रथम प्रति [illegible]
कार्बन या अस्पष्ट हस्तलिखित प्रति कृपया नहीं भेजें ।

0 रचना के बारे में निर्णय रचना प्राप्ति से सामान्यतया दो माह में लिया [illegible]
स्वीकृति से सूचित किया जा सकेगा ।

0 जिन रचनाओं के निर्णय की सूचना रचना प्राप्त होने से दो माह में लेखक[illegible]
पास नहीं पहुँचेगी उन्हें कृपया अस्वीकृत समझें ।

0 अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखक की अनुमति संलग्न करना आवश्यक है[illegible]

0 जिस रचना सामग्री का हम उपयोग नहीं कर पायेंगे उसे आवश्यक डाक टि[illegible]
सता लिफाफा साथ में रहने पर ही वापस किया जा सकेगा ।

0 अस्वीकृत रचनाएँ केवल तीन माह तक सुरक्षित रखी जाती हैं । तत्पश्चात् [illegible]
रचना के सम्बन्ध में पत्राचार सम्भव नहीं है ।

0 समीक्षा के लिये प्रेषित कृति की कृपया दो प्रतियां भेजें, जिन पुस्तकों की सम[illegible]
कराना सम्भव नहीं होगा उनकी प्राप्ति स्वीकार की जा सकेगी ।

0 पुस्तकों की समीक्षा अकादमी अपने स्तर पर ही करवाती है, पुस्तकों के [illegible]
प्राप्त समीक्षाओं का प्रकाशन सम्भव नहीं है ।

चेतना की प्रतिध्वनियाँ हैं। इसी प्रकार की प्रतिध्वनि हमें आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की इन पंक्तियों में मिलती है "साहित्य सामाजिक मंगल का विधायक है। यह सत्य है कि वह व्यक्ति विशेष की प्रतिभा से ही रचित होता है, किन्तु और अधिक सत्य यह है कि प्रतिभा सामाजिक प्रगति की ही उपज है। एक ही मनोराग जब व्यक्तिगत सुख-दुःख के लिए नियोजित होता है, तो महान् हो जाता है, क्योंकि वह सामाजिक कल्याण का जनक होता है।" ('साहित्य में व्यक्ति और समष्टि') इस सन्दर्भ में नैतिकता को मात्र सामाजिक-आचार न मानकर मानवता का पर्याय ही समझना चाहिए। इसीलिए जो साहित्य हमारी वैयक्तिक क्षुद्र संकीर्णताओं से हमें ऊपर उठा ले जाये और सामान्य मनुष्यता के साथ एक कराके अनुभव कराये, वही उपादेय है।

साहित्य में नैतिकता का तत्त्व कभी विवादास्पद नहीं रहा। मानव सभ्यता के अरुणोदय के साथ ही साहित्य ने आँखें खोलीं। विश्व-मनीषा ने साहित्य की शक्ति को पहचाना, उसके सामर्थ्य को समझा और व्यष्टि और समष्टि के मंगलमय रूपान्तरण तथा उदात्तारोहण में उसकी भूमिका को स्वीकार किया। उसके सम्मोहन से वह मुग्ध हुई और उसने साहित्य को सदैव एक दीप्ति-स्तम्भ का दर्जा दिया। पर, साहित्य में नैतिकता की पुरजोर वकालत की जरूरत उस समय पड़ी जब साहित्य में इतर तत्त्वों की तलाश होने लगी। जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ, अपने देश के सांस्कृतिक इतिहास के किसी भी मोड़ पर साहित्य में नैतिकता पर कभी प्रश्नचिह्न नहीं लगा। यदि हमारे जीवन में नैतिक प्रतिमान वरेण्य रहेंगे, नैतिक निष्ठाएँ सम्मानित होंगी, नैतिकता के सिरमौर भास्वर व्यक्तित्वों का अनुसरण होगा तो यह सब कुछ साहित्य में क्यों नहीं होगा? यही बात चिरकाल तक विश्व के अन्य साहित्यों में भी प्रतिष्ठित रही। मनुष्य ने अपने स्वस्थ सामाजिक जीवन के हेतु सदैव साहित्य की ओर ताका। उसे सद्साहित्य से न केवल आनन्द ही मिला अपितु उसे संजीवनी बूटी ही हाथ लग गयी। किन्तु पिछली सदी में फ्रांस से एक लहर उठी 'कला कला के लिए'। धीरे-धीरे यह इंग्लैण्ड भी पहुँची और फिर वहाँ से हम तक आई। इस लहर को फ्रायड के 'स्वप्नवाद' एवं यथार्थवाद तथा क्रोचे के 'अभिव्यंजनावाद' ने और भी गहरा दिया। परिणामतः, 'कला कला के लिए' तथा 'कला जीवन के लिए' जैसे दो दल बन गये। इंग्लैण्ड में एक दल ऐसा था जो इस सिद्धान्त का अंधभक्त बन गया। इसमें वाल्टर पेटर, आस्कर वाइल्ड, ब्रेडले, विवलरकोच विशेष थे। इसके विपक्ष में रस्किन, मैथ्यू ऑर्नल्ड, आई ए रिचर्ड्स तथा एम्बर क्राम्बी थे। 'कला जीवन के लिए' के पक्षधर अपने देश की सुकुमार कला को एक विदेशी, जीवनरसरहित, स्वप्न-दर्शी पलायनवादी अभिगम को सौंपना घोर अकल्याणकारी समझते थे। बहरहाल, कई सालों तक दोनों सोचों का खण्डन विमण्डन होता रहा। दोनों दलों के अनुयायी, प्रतिपक्षी आते रहे, जाते रहे। अपने देश में भी इन सोचों ने जोर पकड़ा। जिसको जो रुचा, सुविधाजनक लगा, उसने उसे अपना लिया। दोनों दलों के 'महलों' में

अपने अपने ढंग से अपने अपने पक्षों की जोरदार वकालत की। दोनों दृष्टियों की तर्ज पर साहित्य गढ़े गये। कुछ ने इसे सराहा तो कुछ ने उसे। पर 'कला कला के लिए' की लहर का जादू बहुत दिन तक नहीं चल पाया और लोग असलियत को समझ कर साहित्य में सनातन मानवीय मूल्यों एवं नैतिक प्रतिमानों की पुनर्स्थापना की बाट जोहने लगे। पर, साहित्य में नैतिकता का प्रश्न एक बार फिर से कुलबुलाने लगा। कुछ समय तक तो दुराग्रह में जड़ हुए कुछ लोगों ने इस कुलबुलाहट को नजरअंदाज करने की कोशिश की पर मन ही मन वे महसूस करते रहे कि उनका पक्ष कमजोर है। उन्होंने अन्ततः अपने मन को साहित्य में नैतिकता की ओर मोड़ना शुरू किया।

दरअसल, 'साहित्य में नैतिकता' पर विवाद होना ही नहीं चाहिए। यह तो विश्वजनीन, सार्वभौमिक एवं सर्वमान्य दृष्टि है इसे कभी भी नकारा नहीं जा सकता। संसार के किसी भी धर्मग्रंथ को उठा लीजिए सभी में मनुष्य को श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर बनने की बात कही गयी है। वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण-महाभारत, उपजीव्य काव्य, बाइबिल, कुरान, गुरुग्रंथ साहब, महावीर वाणी, बौद्ध दर्शन—सभी में मनुष्य को अनुदात्त से उदात्त की ओर जाने के लिए कहा गया है। यदि मनुष्य समाज में रहता धर्मों का पालन करेगा, एक मान्य आचार-संहिता को अपनाएगा तो साहित्य इससे कैसे अछूता रहेगा? जो साहित्य मनुष्य का उद्धार करने में मदद नहीं करता वह साहित्य लोकमंगल से अछूता साहित्य है। ऐसा साहित्य वरेण्य नहीं माना जा सकता। जो साहित्य मनुष्य को कुंठाओं से उठाकर श्रेष्ठताओं के विस्तृत फलक पर प्रतिष्ठित करे वही हमारा अनुकरणीय साहित्य है। यहां एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है क्या साहित्य नैतिकता के नाम पर पैगम्बरी मुद्रा धारण कर और उपदेशक के रूप में सीख देता रहे? यह प्रश्न साहित्य में नैतिकता के संदर्भ में बहुत ही महत्वपूर्ण है। सच्चा साहित्य सर्वथा कभी भी सीधा उपदेश नहीं देता। यदि साहित्य [illegible] को 'न कुछ और हि युग' [illegible] और उसमें क्या फर्क रह जायगा? इसके लिए आवश्यक यह है कि किसी भी 'कथ्य' को [illegible] उपदेश ही [illegible] सूक्ष्म की [illegible] प्रक्रिया से गुजारा जाये। विचार [illegible] स्वाद बनकर, धीरे धीरे रसा होकर, रचना बिन्दुओं [illegible] है [illegible] केवल [illegible] तक होता है परन्तु हमारा उन्नायक भी होता है। विश्व में [illegible] महत्त्वपूर्ण साहित्य, अपने विविध रूपों में इसी प्रकार का साहित्य है। वह चाहे [illegible] हो या 'वेस्टलैंड [illegible]' हो, या [illegible] महादेवी या [illegible] का साहित्य हो। जो साहित्य किसी 'वाद' या विचारधारा को [illegible] होता है वह साहित्य अल्पजीवी साहित्य होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्य अपनी बात [illegible] के द्वारा कहता है, वह हम [illegible] हमारी कोमल भावनाओं को [illegible] कि हम साहित्य के [illegible] विचारतत्त्व को बिना कुछ कहे स्वीकार करने को तैयार हो जाते

हैं। साहित्य के सुधी अध्येता, रसज्ञ इस मर्म को भली-भाँति समझते हैं। इसलिए साहित्य में नैतिकता का अर्थ मात्र उपदेशबाजी नहीं समझना चाहिए। साहित्य में उदात्त तत्त्व की चर्चा करने वाला ग्रीक मनीषी लाजाइनस उस साहित्य को चिरजीवी मानता है जो 'समस्त मानवजाति को समस्त कालखण्डों में प्रमुदित करने की क्षमता रखता हुआ उसे श्रेष्ठ से श्रेष्ठ बनने में सहायक हो। मैं सोचता हूं इससे अच्छा कोई अन्य निकष नहीं हो सकता साहित्य की प्राण-शक्ति को जाँचने का। संसार में मत-वैभिन्य होना स्वाभाविक है, वैविध्य ही तो मनुष्य-जाति का सौन्दर्य है, दृष्टियों में अनेकता तो होगी ही—इसलिए समय-समय पर उद्‌भूत होने वाले सभी विचारों को समझने की कोशिश करनी चाहिए, पर मनीषा के उत्तमांश को ही अपना आदर्श बनाना चाहिए।' जो साहित्य हमें गिराये वह कुत्सित साहित्य है, इसलिए हेय और त्याज्य है, जो साहित्य हमें हमारी चेतना के सभी स्तरों पर आनन्दित एवं उज्जीवित करे वही साहित्य श्रेष्ठ एवं वरेण्य है।

□

समाज को पढ़ने का वैचारिक चश्मा

डॉ. यश गोयल

मन का द्वन्द्व। समुद्र तट पर लहरों का लहर-दर-लहर टकराना। रेत के धोरों पर चिलचिलाती धूप में मरीचिका का झिलमिलाना। प्रसव की पीड़ा। मचलते-रूठते नन्हें के मोती-से आंसू। यौवन के उरोजों से सरकती धूप-छांव। प्रेमी-प्रेमिका के मिलने-बिछुड़ने की तृप्त-अतृप्त प्यास। उम्र की हर दहलीज पर बदरंग हुए चेहरे। तन्हाई। सूखी बावड़ी की क्षत-विक्षत सीढ़ियों में तलहटी की उमस का अहसास। या मृत्यु से जन्म के रिश्ते का 'विचार'। क्या यह सब हमारे अंदर है या ब्रह्माण्ड के इस टुकड़े पर इन्सानों के जंगल में भटक रहा 'विचार' है?

विचार रूपी संस्कार के बीज का उद्‌भव कब, कैसे, और कहां हुआ अगर यह आवश्यक है, तो यह भी सोचना चाहिये कि पहले मुर्गी थी या अण्डा। पहले गुणसूत्र (जीन्स) थे या शुक्राणु डिम्ब। पहले विचार हुआ या संस्कार? प्रकृति से पहले प्रकृति थी। सृष्टि के पार सृष्टि है। जीवन के धरातल पर सच है या झूठ। दोनों के बीच का मार्ग तो गड्ड-मड्ड है। अस्पष्ट है। अपूर्ण है। सच को सच के रूप में देखा जाये तो वह कड़वा भी हो सकता है। झूठ की तो बुनियाद ही नहीं होती। फिर भी खड़े हुए हैं। सच को नग्न रूप में देखने-दिखाने, सुनने-सुनाने, पढ़ने-पढ़ाने, लिखने-लिखाने या साक्षात् प्रकट कराने की जिम्मेदारी इस तीन प्रकार के समाज में किसकी है? इतिहास साक्षी है, इसका नेतृत्व बहुतों ने किया। कुछ कर रहे हैं, रहे सहे करने की चेष्टा में हैं।

सृजन का सच तो वही बता सकते हैं जिसने कुछ जनने की पीड़ा भोगी है। पहले अपने आपको, परिवार को और बाद में समाज को कुछ देना या उससे लेना चाहा है। या पाने की खुशी में समाज को देने का दंभ भरना आज के दौर में अगर कोई अपवाद नहीं तो कोई आश्चर्य भी नहीं होना चाहिये। यह सबंध [illegible] स्वयं को स्वयं के अंदर गहरे में उतर कर टटोलने की [illegible]री

होनी चाहिये। दायित्वबोध होना चाहिये। एक-एक व्यक्ति से समाज बना है। समाज हम इंसानों का ही पर्याय है। इस नाजुक संबंध का सूत्रधार कौन है? संदेश, शायद। संबोधन से पहले तो हमें स्वर चाहिये। स्वर को तैरने के लिए जहां शब्द चाहिये वहीं भाषा के मोती भी चाहिये। हर स्वर, हर भाषा, हर संवाद, या साहित्य प्रभावपूर्ण हो इसका मुझ से तो सरोकार न हो तो भी चलेगा मगर उससे प्रभावित होना है जो उसे भोग रहा है। सह रहा है। या जिंदगी की मझधार में है। डूबते को तिनके का सहारा ही काफी है। साहित्य ही वह तिनका है भटके को रास्ता दिखाता है। अतृप्त को तृप्त करता है। आंसुओं को पोंछकर खिलखिलाने की कलियां देता है। किसी मरीचिका की हकीकत बनता है। उम्र की दहलीज पर सूर्योदय की लालिमा बन जाता है। मृत्यु-जन्म के फर्क को स्थापित करता है। ब्रह्माण्ड से हटा यह भूखण्ड कभी आग का गोला रहा होगा—आज तो प्रकृति का अनुपम मेला है। मिलना बिछुड़ना मगर दिन-रात की नियति है तो रोशनी में अंधकार, आशा में निराशा और है यथार्थ है। जीवन के पर्याय हैं।

जीवन की अंधाधुंध दौड़ में साहित्य ही तो पहचान बनाता है। मनुष्य है मनुष्य की। यह साहित्य न तेरा है, न मेरा है। यह तो सार्वभौम है, सर्वशक्तिमान है, सर्वव्यापी है। साहित्य की पकड़ तो इंसान के दायरे से पार है। कलम की नोक से विस्फुटित होने वाले शब्दों की सीमा तो सात समुंदर पार तक है।

जब मैं यह मान लूं कि शरीर के अंदर रहने वाला मैं इंसान केवल वाहक (कैरियर) हूं—इस शरीर को जिस्म से निकालकर पिण्ड तक पहुंचाने का तो समाधान खोजना आवश्यक नहीं रह जाता है। वह समाधान पारदर्शी है। आंखों के सामने टीवी दर्पण में दिख रहे खूबसूरत जिस्म की तरह है।

इसी तरह शब्द, भाषा और साहित्य को आत्मसात कर समाज में इसका सहायक बन जाना क्या मात्र संयोजन है? संस्कारीय कर्म है। संस्कारयुक्त शरीर के वैचारिक सम्पन्नता का परिचायक है। इस वैचारिकता की प्रेरणा कौन है? लिखित मन में विचार की कलिका कहां फूटती है? अंकुरण के बाद नन्हा पौधा किस भूमि पर पनपता-फूलता है। क्या ऐसी कोई वैचारिक प्रतिबद्धताएं हैं जो सर्जक को अपनी दिशा से मोड़ सकती हैं? उद्देश्य सामने हो, बावजूद प्रतिकूल परिस्थितियों के, [illegible] विचार मन मस्तिष्क में रचना का आकार बन ही जाता है।

देश की आजादी के बाद जैसे-जैसे अर्थतंत्र और राजनीतियों में बदलाव आता गया [illegible] हमारे जीवन के सरोकार, जीवन मूल्य भी बदले। परिवेश ने करवट ली। [illegible] नहीं रहे [illegible] बदली है। कम से कम साहित्य के [illegible] भी नहीं रह।

[illegible] के अभाव को आधार बनाकर इन्हीं को दलित, शोषित, शास-

सर्जक समाज को पढ़ने की कोशिश करता है और सृजन करता है। वही बाद, आदतन, साहित्य की प्रतिबद्धता बन जाता है और अक्सर 'वाद' का पत्थर हो जाता है। चश्मा चढ़ाये हुए ही पूर्वाग्रह सजो लेना व्यसन बन जाता है। भ्रांतियों एवं व्याधियों के परजीवी होते हुए साहित्य सृजन हमेशा प्रश्नों के घेरो मे रहा है। इन सर्जकों को जनवादी या प्रगतिशीलवादियो में से एक को चुनना अनिवार्य हो जाता है। सवाल प्रतिनिधित्व का बन जाता है। वैचारिक सवाल खेमेबाजी का होकर रह गया। जिन्होने अपने को इन वादो के अनुरूप ढाला वे ढल गये जो रह गये वे कहीं के नहीं रहे। जो बिना किसी प्रतिबद्धता के आगे बढ़े उन्होने देशीय-अन्तर्देशीय राजनीति को भी सृजन की विषय वस्तु बनाया। उनके विचार प्रदूषित नहीं हुए। बाध्य न होकर निर्बाध सर्वप्रिय बने रहे। ऐसा ही एक संकलन 'अफगानिस्तान ' बुजकशी का मैदान' उदाहरण है (लेखिका नासिरा शर्मा) जो अमेरिका के लब्ध प्रतिष्ठित राजनीति लेखक जेम्स मिशनर के सृजन से कम नही आके गये हैं।

समकालीन विषयो पर भी कालजयी रचनाएं बनती हैं। उन पर सर्जक चर्चित हुए हैं। जिन मूर्धन्य रचनाकारो ने पत्रकारिता के जरिये साहित्यिक पत्रकारिता का दामन थामा वे चमके भी, प्रतिष्ठित भी हुए और स्मरणीय भी हैं। दो तरह के सर्जक हैं, एक वे जो विशुद्ध साहित्यिक विधा (कथा, कविता, व्यग्य, लेख, आलोचना) से जुड़े रहे। दूसरे वे जिन्होने पत्रकारिता मे हस्तक्षेप रखते हुए साहित्य की शतरंजी गोटियां खेली। विशुद्ध साहित्य सृजन के सर्जक जीवन पर्यन्त जुटे रहे–अपने प्रान्त या राष्ट्रीय स्तर पर जाने भी गये तो एक सीमा तक। पहली श्रेणी में राजस्थान के प्रख्यात कथाकारो में यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र, विजय दान देथा, हेतु भारद्वाज, ईश्वरचदर, डॉ स्वयं प्रकाश, डॉ आलम शाह खान, हसन जमाल, शचीन्द्र उपाध्याय, डॉ प्रेमचन्द गोस्वामी, प्रकाश जैन, राजेन्द्र सक्सेना, डॉ धनराज चौधरी, डॉ मदन केवलिया, गिरधर राठी और नव सर्जकों की एक पक्ति है।

जबकि राष्ट्रीय धारा से जुड़ने का श्रेय दूसरी श्रेणी के साहित्यकारों का रहा जिन्होने साहित्य का भी स्वाद लिया और पत्रकारिता की कुर्सी पर भी आसित हुए। मुंशी प्रेमचद के बाद जैनेन्द्रकुमार जैन, यशपाल, अमृतराय, अज्ञेय, विष्णु प्रभाकर, कमलेश्वर, रघुवीर सहाय, कन्हैया लाल नदन, धर्मवीर भारती, उदयन शर्मा, राजेन्द्र यादव, मृणाल पाण्डे और अब विद्यानिवास मिश्र आ जुड़े हैं। वैचारिकता की धारा मे बचने वाले सर्जक भी आज इस ओर अग्रसर हैं कि उन्हें कोई पत्रिका मिले, पद मिले और कुछ नही तो किसी पत्र-पत्रिका का स्तम्भ ही मिल जाये। इस तावड़तोड़ मे किसी ने स्तम्भ सम्भाला तो किसी ने मच। वैचारिक प्रतिबद्धता थोपने की प्रवृत्ति कभी-धीमी तो कभी तेज हुई। गंभीरता से देखा जाये तो इन जनवादियों, प्रगतिशील सर्जको ने भी आतकवाद, साम्प्रदायिकता, और धर्मनिरपेक्षता जैसे मुद्दो पर मच तो बहस शुरू कर दी है। दोनों वादों के बहुतेरे लेखक ऐसे हैं जो सामान्य मच की तलाश में रहते

है। क्यों कि साहित्य में मूल सवाल सम्प्रेषण का है। एक्सप्रेशन का है। इन वादों में फंसकर साहित्य की विचारधारा से अलग हो जाने का डर ही इन वादियों की विवशता रही होगी।

पिछले दो दशकों (१९७०-८०, १९८०-९०) के बीच जिस तरह से देश की राजनीति में 'हरीकेन' (तेज अंधड़) सा आता-जाता रहा उसके रहते साहित्य भी एक राह पर नहीं चल सका। सटासट बदलने वाले 'इश्यूज' और 'मासमीडिया/इलेक्ट्रोनिक मीडिया' से साहित्य भी प्रभावित हुआ। सर्जक को ठहरकर रुकने का मौका भी पिछले पांच वर्षों के घटनाक्रम ने नहीं दिया। स्थायीत्व का खतरा इस कदर मंडराता रहा—वैचारिकता पर, सोच पर, प्रतिक्रियाशीलता पर, सृजन करने से पहले और बाद में कि सबकुछ अपरिपक्व, असामयिक और अस्वादनीय लगने लगा। नैतिक मूल्यों का पतन, स्वार्थी तत्वों का चढ़ता ज्वर और सत्ता की लोलुपता ने सामाजिक संरचना को हिला दिया। जिस रफ्तार से परिवर्तन हुए उस रफ्तार से शायद कलमकार की कलम नहीं चली। वह शायद गांव की पगडंडी छोड़कर सड़क के फुटपाथ पर आ गया। साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं को पक्षाघात हुआ। सबकुछ जैसे सिमटने लगा। इस मुठभेड़ में कुचले जाने के भय से शायद वह विचारवान सर्जक, सकपकाया सा मौन तो है पर उसमें आत्मविश्वास में कमी है।

पिछले दशक में हिन्दी साहित्य में जिस तरह का घटाटोप संकट छाया रहा वह किसी 'साहित्यिक आतंकवाद' से कम नहीं रहा। काश ! साहित्य का भी कोई भारतीय संविधान होता। और एक मांग उठती, इस कथित हिन्दूराष्ट्र बनाने वालों की तरह, हिन्दी साहित्य को स्वायत्तता दिलायी जावे। मगर इस विचारक को रुक कर पलटने की या मुड़कर सोचने का मौका भी नहीं मिल पा रहा है। हतप्रभ सा है यह वैचारिक-जीव।

एक बात और ध्यान देने योग्य है। अज्ञेय ने एक बार एक साक्षात्कार (धर्मयुग, जून १९७६) में बहुत स्पष्ट शब्दों में कहा था, 'सर्जक का काम कूड़ेदान उलटना नहीं है। न ही कूड़ेदान को समाज के बीच में लाकर उलट देना ही एकमात्र यथार्थवाद है ।'

मगर आज जो 'फिलर लिटरेचर' (स्थानापूर्ति वाला साहित्य) का जो 'कास्पेट' प्रचलित है उसके रहते सर्जक की क्या उपयोगिता बच गयी है ? साहित्य रचना की जब औपचारिकता ही रह जाये, प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में तो उसे कोई बड़ा नामी सर्जक भर या कुकुरमुत्ते की तरह मौसमी लेखक। आम पाठक को कोई खास फर्क नहीं पड़ता। यह सच्चाई भी है और समय की विडम्बना भी। बादलों के उमड़ने, रेत के टीलों के विस्थापित होने, राजनीतिज्ञों के ध्रुवीकरण और दुरभिसंधित राजनीति के होने तथा मौसम के बार-बार बिगड़ने की तरह ही साहित्य भी उखड़ा-उखड़ा-सा है। पर प्रबुद्ध लोगों पर आदी यह जिम्मेदारी बहुत ही अजर-अमर हो गयी है।

इन सब विपदाओं और अपवादों के बीच मानव के 'ह्यूमेन' के लिए सजीव है। सक्षम है। विचार की गुणात्मकता और सार्थकता में कहीं परिवर्तन नहीं हुआ है। वह सतत है। संतुलित है। प्रबुद्ध है। महत्त्वपूर्ण है। है। जरूरत तो उस विचारक की है जो इसका सही-सही इस्तेमाल करे।

□

मधुमती उपहार योजना

- मधुमती के दो वार्षिक ग्राहक बनाने पर—
  राजस्थान साहित्यकार परिचय कोश, पृष्ठ २०२

- मधुमती के तीन वार्षिक ग्राहक बनाने पर—
  [अ] राजस्थान साहित्यकार परिचय कोश, पृष्ठ २०२
  [ब] साहित्य के मान और मूल्य, पृष्ठ २३१

- मधुमती के छः वार्षिक ग्राहक बनाने पर निम्नांकित पुस्तकें—

[अ]	राजस्थान के कवि [हिन्दी]	स. योगेन्द्र किसलय	पृष्ठ
[ब]	राजस्थान के कहानीकार	स. डॉ. आलमशाह खान	"
[स]	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य	स डॉ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	"
[द]	राजस्थान में हिन्दी कथा व नाटक साहित्य के सौ वर्ष	स डॉ नवलकिशोर एवं डॉ रामचरण महेन्द्र	"
[य]	राजस्थान के गद्य काव्यकार	सं. डॉ रामचरण महेन्द्र	"

[नोट : उक्त पुस्तकें डाक प्रमाण-पत्र के अन्तर्गत प्रेषित की जायेंगी]

मॉरीशस के साहित्यकार अभिमन्यु अनत से डॉ. आरसु की बातचीत

भारत मेरी सांस्कृतिक भूमि है

[विदेश में रहकर हिन्दी की सेवा करने वाले लेखकों की सूची में अभिमन्यु अनत (मॉरीशस), डॉ चेलिशेव लोठार लुटसे (जर्मनी), ओदोलेन स्मेकल (चेक रिपब्लिक) आदि के नाम आदर से लिये जाते हैं ।

सृजनात्मक प्रतिभा के धनी अभिमन्यु अनत की कृतियों की कई सूचियां हैं । उनकी कृतियां भारत से ही प्रकाशित हुई हैं । मॉरीशस और भारत की सांस्कृतिक समानताओं पर उनकी कृतियों ने प्रकाश डाला है ।

लाल पसीना, गांधीजी बोले थे, जम गया सूरज, मार्क ट्वेन का स्वर्ग, शब्दभंग, मुड़िया पहाड़ बोल उठा, चौथा प्राणी, और नदी बहती रही, तीसरे किनारे पर, चुन चुन चुनाव, हड़ताल कब होगी, जम गांवो का बहादुर आदि उनके बहुचर्चित उपन्यास हैं ।

मलयालम भाषी हिन्दी लेखक डॉ आरसु (कालिकट विश्वविद्यालय, केरल) ने अभिमन्यु अनत से एक भेंटवार्ता की है, जो प्रस्तुत है ।] —सम्पादक

डॉ. आरसु- हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखकों में आपको स्थान मिला है । आपकी कृतियां भारत में बहुचर्चित भी हैं । पहले मैं जानना चाहूंगा कि साहित्य के प्रति आपका लगाव कैसे हुआ ? किन किन स्रोतों से आपको प्रेरणा मिली है ?

अभिमन्यु अनत–साहित्य के प्रति लगाव तो उसी वक्त से शुरू हो गया था जब औरों की पीड़ा को अपनी यातनाओं के साथ आत्मसात करने के अवसर सामने

[illegible]

डॉ. मारसु – [illegible]

अभिमन्यु – मैं अब तक कोई स्वतंत्र [illegible] विधाओं में अपनी [illegible] अभिव्यक्ति की है, जिनमें कविता, उपन्यास, नाटक और कहानी प्रमुख हैं। वैसे तो [illegible] मुझे पसंद है, पर मैं उपन्यास और कविता में अपनी अभिव्यक्ति को सहज कर पाता हूँ और नाटक [illegible] भी यही बात है।

डॉ. मारसु – एक कथाकार के रूप में आप ज्यादा मशहूर हैं। आपके उपन्यासों में कल्पनात्मक संवेदना है। उपन्यास के संबंध में आपकी धारणा क्या है?

अभिमन्यु – एक कथाकार की हैसियत से उपन्यास को मैं खास [illegible] का [illegible] मानता हूँ यद्यपि इतिहास को मैं भी बड़े [illegible] के उपन्यास से अधिक नहीं मानता। उपन्यास में फलक के अधिक विस्तृत होने के कारण लेखक को अपने तथ्य और सत्य दोनों के लिए एक [illegible] परिवेश मिलता है जिससे वह टूटते संबंधों और बिखर रहे मानव मूल्यों को फिर से बनाने और समेटने में अपना योगदान दे सके। उपन्यास किसी मसीहे का फतवा नहीं होता फिर भी उसमें इतना दम तो होना चाहिए कि वह अपने पाठक को मनोरंजन के साथ-साथ एक दिशा दे सके। जहाँ तक मेरे अपने उपन्यासों का प्रश्न है वह हर दिशा से आनेवाले शोषण के खिलाफ एक आवाज बुलन्दी है।

डॉ. मारसु – आप मॉरीशसवासी हैं और लिखते हैं हिन्दी में। किन्तु आपके उपन्यासों में भारतीय परिस्थितियों तथा रस्म और रिवाजों का वर्णन भी आता है। इसका कारण बताइए।

अभिमन्यु – अगर मेरे उपन्यासों में भारतीय परिवेशों और परिस्थितियों की भी झलक आ जाती है तो वह केवल इसलिए कि हर देश में सर्वहारा वर्ग की एक सी समस्या है, एक सा संघर्ष है। राजनीतिक और पूँजीपति तन्त्र की धाँधलियाँ भी एक सी हैं, चाहे वह भारत हो, अफ्रीका हो, लैटिन अमरीका हो या मॉरीशस हो। मेरे उपन्यास की कहानियाँ आम आदमी की कहानियाँ हैं। सारी परिस्थितियाँ मॉरीशस की होती हुई भी मॉरीशस तक सीमित नहीं हैं।

डॉ. मारसु – आप मॉरीशस के हैं। भारतीय संस्कृति से मॉरीशस संस्कृति प्रभावित है न?

अभिमन्यु – मॉरीशस की संस्कृति कोई चार-पांच अलग देशों से आई हुई जातियों की मिली जुली संस्कृति है जिस में भारतीय संस्कृति एक महत् स्थान रखती है। अपनी बुनियादी विशेषताओं के साथ मॉरीशसीय संस्कृति जहां यूरोप और अफ्रीका की संस्कृतियों से जुड़ी हुई है, वहां भारतीय संस्कृति भी उसका अभिन्न अंग बन जाती है। इसी के आधार पर यहां आज भी भारतीय लोकगीत, लोककला, रीति-रिवाज तथा धर्म और भाषाएं जीवित हैं।

डॉ आरसु– आपके उपन्यासों से पता चलता है कि प्राचीन भारत के कई आचार और मान्यताएं आज भी मॉरीशस में जिन्दा हैं।

अभिमन्यु – कुछ महत्वपूर्ण पुरानी मान्यताएं हमारे समाज में आज भी जीवन्त हैं। शादी-ब्याह, पूजा तथा ये सभी रस्म और रिवाज उन्हीं पुराने आधारों पर स्थित हैं। आधुनिक रफ्तार के बावजूद यहां महिलाएं आज भी साड़ियां पहनती हैं, टीका लगाती हैं मंगलसूत्र और चूड़ियों को सुहाग के प्रतीक मानती हैं। मर्दों के बीच सत्संग, रामायण – पारायण आदि का प्रचलन है।

डॉ आरसु– आपकी कृतियों से संकेत मिलता है कि यहां धर्म का भी बड़ा महत्व है।

अभिमन्यु – जी हां, मॉरीशस में धर्म का अपना विशेष स्थान है। यहां हर गांव-शहर में हिन्दू मंदिर है और सभी धर्म ग्रंथों का पठन-पाठन होता है।

डॉ आरसु– 'लाल पसीना' में वर्णित घटनाएं क्या इतिहाससम्मत हैं? या वह कल्पना प्रसूत है? मॉरीशस के विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए फ्रांस भी जाते हैं और फ्रेंच संस्कृति क्या उधर हावी हो उठती है?

अभिमन्यु – मॉरीशस के विद्यार्थी अपनी उच्च शिक्षा के लिए पाश्चात्य देशों के अलावा भारत में भी अध्ययन के लिए आते हैं। यहां फ्रेंच का अधिक बोलबाला होने के कारण फ्रांसीसी संस्कृति की यहां अधिक धाक है। हमारे शिक्षित समाज ने इस दूसरी संस्कृति को अंगीकार करके भी अपनी भारतीय पहचान को नहीं छोड़ा है। 'लाल पसीना' में भारतीयों की जो संघर्ष कथा है वह इस देश के इतिहास की सच्चाई है जिसे यहां के गोरे इतिहासकारों ने इतिहास में शामिल नहीं किया। पर उस सच्चाई को हर हालत में ऊपर आना था। इसलिये मॉरीशस के भारतीय मजदूरों की यातना गाथा के रूप में 'लाल पसीना' सामने आया।

डॉ आरसु– 'गुड़िया पहाड़' उपन्यास पढ़ा। जनश्रुति, पर्व-त्यौहार आदि के भी उल्लेख आपके उपन्यासों में मिलते हैं। वे भारतीय वातावरण में मेल खाते हैं। इधर के कौन कौन से त्यौहार उधर मनाये जाते हैं?

अभिमन्यु – जन श्रुतियां और दन्तकथाएं यहां प्रचलित हैं। हर संस्कृति की अपनी-अपनी लोककथाएं हैं। इस देश के सबसे अधिक प्रसिद्ध पहाड़ 'मुड़िया पहाड़' पर एक बहुत ही सुन्दर लोककथा है। इसी तरह यहां के नदी, नाले और यहां के जीव-जन्तुओं पर कई दन्तकथाएं प्रचलित हैं।

इधर के प्रधान त्यौहारों में संक्रांति, ताइपूसम कावडी, होली, महाशिवरात्रि, रक्षा बंधन, गंगा स्नान, दुर्गापूजा, जन्माष्टमी और दीवाली प्रमुख हैं।

डॉ. धारगु– मॉरीशस आज एक स्वतंत्र देश है। इसलिए गुलामी के बाद की देश की कई समस्याएं सुलझ गयी होंगी।

अभिमन्यु – जी हां, मॉरीशस आज एक स्वाधीन देश है। पर जैसा कि स्वाधीनता का अर्थ कहीं भी शोषणमुक्त स्थिति नहीं है इसलिए शोषण की स्थिति आज भी नेस्तनाबूद नहीं हुई है। काले-गोरे के बीच कोई बहुत बड़ी समस्या आज यहां तो है नहीं। फिर भी आर्थिक रूप से यहां के गोरे, भारतीय मूल के लोगों से अधिक समृद्ध हैं।

डॉ. धारगु– मॉरीशस की जनता को सांस्कृतिक जागरण की ओर उन्मुख करने वाले चिन्तक और नेता कौन कौन हैं ?

अभिमन्यु – मॉरीशस के दार्शनिक, चिन्तक और सांस्कृतिक नेताओं में प्रो. विष्णुदयाल, डॉ. रामगुलाम, सोमदत्त बखोरी आदि प्रमुख हैं।

डॉ. धारगु– जनजीवन और संस्कृति पर आपने बल दिया है। इस प्रसंग में आपने किस पहलू पर ज्यादा ध्यान रखा है ?

अभिमन्यु – अपने उपन्यासों में जनजीवन और संस्कृति को उजागर करते समय मैंने जनजीवन और संस्कृति पर ही विशेष ध्यान दिया है। इसी के आधार पर यहां के रस्म और रिवाज, यहां की सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्तर के अंतर पर भी ध्यान दिया है।

डॉ. धारगु– आपको मॉरीशस का प्रेमचंद मानना उचित लगता है क्या ? आपके उपन्यासों की चेतना प्रेमचंद की भी है। क्या प्रेमचंद की विरासत से आपको मदद मिली है ? आपके अनुसार प्रेमचंद का स्थायी महत्व किस बात पर निर्भर है ?

अभिमन्यु – मॉरीशस और भारत तथा उन तमाम देशों में जहां मैं पढ़ा जाता हूं उन सभी के लिए मैं अभिमन्यु अनत हूं और रहूंगा। मेरे पाठक मुझे प्रेमचंद की श्रेणी में लाकर मुझे अधिक महत्व दे जाते हैं। इस मान्यता को स्वीकारते हुए भी मैं अपने को प्रेमचंद से आगे की कड़ी का लेखक मानता हूं और शायद इसी में मेरी सही पहचान भी है। मैं यह मानकर चलता हूं कि

भारत के प्राय. सभी लेखकों को प्रेमचंद ने प्रभावित किया है। उनमें मैं भी एक हूं। प्रेमचंद का स्थायी महत्व इस बात में है कि उन्होंने अपनी रचनाओं में पीड़ित वर्ग को जो स्वर दिया है उससे इतिहास का सूनापन खंडित हो जाता है।

डॉ धारमु– मॉरीशस के किसान और मजदूरों की व्यथाओं को आपकी कृतियों में स्थान मिला है। उधर की आम आदमियों की हालत पर क्या आप बिल्कुल संतुष्ट नहीं है?

अभिमन्यु – जिस दिन मैं आम आदमियों और मजदूरों की हालत से संतुष्ट हो जाऊँगा उस दिन से आगे लिखने की जरूरत ही महसूस नहीं करूँगा। साहित्य में रिश्ते को बनाने का प्रयास होता है। मेरी भी यही चेष्टा रही है—और यह उस वक्त तक बनी रहेगी जब तक कि मालिक और मजदूर, सत्ताधारी और प्रजा तथा आदमी और आदमी के बीच के रिश्ते आदान-प्रदान के सही रिश्ते नहीं हो जाते। पसीने आज भी पानी के मूल्य बिक रहे हैं। मेरे भीतर के लेखक को यह गवारा नहीं है। मेरी संतुष्टि तो तब होगी जब पसीने और आदमीयत की सही पहचान की जाय।

डॉ धारमु– भारतीय पाठकों से आपकी अपेक्षाएं क्या क्या हैं? इन पाठकों के बारे में आप क्या सोचते हैं?

अभिमन्यु – भारतीय पाठकों के प्रति मेरे मन में बहुत बड़ा आदर है। इन्होंने मुझे जो स्नेह और महत्व दिये हैं वे मुझे अपने देश में भी नहीं मिले। मेरी ४५ पुस्तकों का उन्होंने जो स्वागत किया है वह मेरे लिए सबसे बड़ा पुरस्कार है। भारत के इस छोर से उस छोर तक मेरे पाठकों के पत्र मुझे मिलते रहते हैं। उनके सुझाव और शिकायतों से मुझे नई दृष्टि मिलती रहती है।

डॉ धारमु– मॉरीशस और भारत के सांस्कृतिक संबंध पर लेखक की हैसियत से आपकी दृष्टि क्या है?

अभिमन्यु – मॉरीशस और भारत के बीच बहुत अच्छे सांस्कृतिक संबंध हैं। पर इस रिश्ते को और भी घनिष्ट होना है। विसंस्कृतिकरण की बाढ़ में इन दोनों देशों को और भी करीब आना अत्यन्त आवश्यक है। भारत सरकार तथा सांस्कृतिक संबंध की संस्थाओं को इस दिशा में और भी आगे बढ़ना है।

डॉ धारमु– हिन्दी के किन-किन साहित्यकारों से आप प्रेरित और प्रभावित हैं?

अभिमन्यु – प्रेरणा और प्रभाव की बात मैं ठीक तरह से नहीं जानता। पर एक बात जानता हूं। बहुत कम उम्र से ही मैं बाबू शरतचन्द्र के उपन्यास के

हिन्दी संस्करणों का बेतहाशा पाठक था। प्रेमचंद को भी उस जमाने में खूब पढ़ा था। लेकिन जिन लेखकों के साथ कंधे से कंधे मिलाकर चलने की हमेशा अभिलाषा रही, वे हैं निराला, मुक्तिबोध, धूमिल, यशपाल, कमलेश्वर, धर्मवीर भारती, अज्ञेय, जैनेन्द्र, राजेन्द्र यादव तथा और भी कई लेखक हैं।

डॉ आरमु– आपके पात्र जीवन के अत्यंत निकट के प्रतीत होते हैं। वे आपके जीवन के जाने पहचाने पात्र हैं या कल्पित ?

अभिमन्यु – मेरे पात्र मेरे परिचित प्रसंग से हैं। वे मेरे अपने इर्द-गिर्द के हैं। उनके कुछ अंश मेरी भावनाओं और कल्पनाओं से भी जुड़े रहे हैं। ये पात्र मूलरूप से यथार्थ पर ही आधारित रहे हैं जिनको बहुत करीब से मैंने जाना है। इनमें कुछ मेरे अपने ही अस्तित्व के भाग भी हैं।

डॉ आरमु– 'गांधीजी बोले थे' शीर्षक उपन्यास में आपके विचार बहुत प्रभावशाली हैं। आज की दुनिया में गांधीजी के विचारों की प्रासंगिकता पर आप का खुला विचार क्या है ?

अभिमन्यु – गांधीजी की प्रासंगिकता आज भी है, लेकिन उसके संपूर्ण रूप में नहीं। क्योंकि आज की औद्योगिक संस्कृति की दौड़ में कई बातें पीछे को छूट जाती हैं और वह स्वाभाविक भी है। इसके बावजूद महात्माजी के कई विचार आज भी अगर सही ढंग से अपनाये गये तो हमारा समाज एक बेहतरीन स्वरूप हासिल कर सकता है।

डॉ. आरमु– 'लाल पसीना' और 'गोदान' का आन्तरिक स्वर समान लगता है। 'लाल पसीना' की रचना प्रेरणा जानने को मैं उत्सुक हूं।

अभिमन्यु – मैं सोचता हूं कि 'लाल पसीना' और 'गोदान' दो अलग धरातल पर खड़े होने वाले उपन्यास हैं। 'गोदान' एक सशक्त रचना है। 'लाल पसीना' उससे थोड़ा हटकर उस समूह संघर्ष की व्यथा-कथा है जिसमें आदमी को केवल अपनी रोटी रोजी के लिए संघर्ष करना ही नहीं था, बल्कि अपनी अस्मिता, अपनी संस्कृति और अपने सम्मान के लिए भी खड़ा होना था। वह अपनी मुक्ति की भी कथा है। तीन भागों में और पन्द्रह वर्षों में लिखा गया वह उपन्यास तीन भागों में तीन अलग पीढ़ियों की संघर्ष कथा है। इसका दूसरा भाग 'गांधीजी बोले थे' है। तीसरा भाग है 'और पसीना बहता रहा'। इस उपन्यास का लेखन-कार्य सैकड़ों इतिहास के गवाहों की गवाही की सहायता से 'रटस' से पहले शुरू हुआ था। इसे मैं 'गोदान' की तुलना में तो नहीं रखता, पर इसे अपनी बहुत बड़ी उपलब्धि अवश्य मानता हूं।

"ढाई घर" का किस्सा तीन पीढ़ियो का है। इसमे एक वह भी पीढ़ी है जो अपने गुजर जाने के साथ-साथ उन प्रतीको को मिटा चुकी है, जिनकी पहचान की जरूरत आज की पीढ़ी को नही है। फिर भी, गुलामी से आजादी के भीतर इतने वर्ष निकाल देने पर यह सोचना गैरजरूरी कतई नहीं बनता है कि बदलाव का रूप बिखरता-टूटता हुआ आज के रूप मे सामने आ सका। यशपाल कृत "झूठा सच" के बाद का यह प्रयास एक जरूरी दस्तावेज का काम करता हुआ लगता है। राजनीतिक बदलाव के साथ सामाजिक बदलाव की अतरग चेष्टाए, कुंठाए और विद्रूपताओं का अतिसूक्ष्म विश्लेषण-क्रम इस उपन्यास की ऐसी विशेषता है जो इसे दूसरे उपन्यासों से अलग करती है। स्वय गिरिराज जी ने यह माना है कि यह एक लम्बी उठानवाली, टूटी-टूटी कथा है जो एक समाज से दूसरे समाज मे बदलते सबधो को रेखांकित करती है।[1]

बदलते सबध किस मुकाम तक पहुचे हैं, इसका विश्लेषण इस उपन्यास मे अत्यत प्रभावी ढग से हुआ है, यथा—

(क) गाधी मर गया—पर बड़े राय जिन्दा हो गये अमरफल पा गये। मैं उन्हीं का बीज हू।[2]

(ख) तब आदर्श मूल्य था, अब मूर्खता है।[3]

(ग) वह सब ब्रिटिश राज के सामने की सजावट थी। बस अपनी कुरसी पर उन्होंने खादी के कवर चढ़वा लिये थे।[4]

(घ) हमारे लोगो मे अक्ल नाम की कोई चीज नही। जब लोगो ने कह दिया कि देश गुलाम है तो गुलाम मानकर लड़ने लगे—आज बता दिया, देश आजाद हो गया तो आजादी के गाने गाने लगे और संतुष्ट होकर पेट पर हाथ फेरने लगे।[5]

बहुत बारीकी से यह रहस्य धीरे-धीरे प्रकट होने दिया कि सामन्तवादी यातनाओं से बाहर निकल कर लोकवादी समाज रचना में दाखिल होने पर भी उनसे छुटकारा आज तक नहीं मिल सका जिनको लेकर आजादी की जग छेड़ी थी।

सामती-जमीदारी का पल्ला झाड़ती आई धीरे-धीरे आजादी की लोकतांत्रिक व्यवस्था और उस लोक व्यवस्था मे बनी रही अग्रेज बहादुर की शान शौकत, ऐब-अख्तियार, जोर-जबरदस्ती, कलम मे ताकत, आवाज में बुलदगी, दबदबा-रुआब, हुक्मरानों की अदा और रियाया की किसी भारी भरकम गाड़ी के नीचे आए पिल्ले की सी पिचटती अन्तिम आवाज। साँप और सपोले में अधिक अन्तर नहीं होता एक सपोला—दस और पैदा हो जाएगे। अग्रेजों ने देश को लुटाया तो दूसरों ने खसोट

१. यह उपन्यास क्यों—(भूमिका) गिरिराज किशोर पृ. सं ११६-११८
२-५. ढाई घर—गिरिराज किशोर : क्रमश पृ. सं. ११९, ४६८

लिया। जिनके माध्यम से यह बड़ा परिवर्तन जिस बड़े मकसद के लिए हुआ, वे फिर भी वहीं बने रहे, जहां वे पहले थे और बिचौलिया ने गिरगिट की तरह रंग बदल कर उन सबको अपने कब्जे मे बखूबी ले लिया, जिसे लोक को सौंपना था। और यह तख्ती अपनी जगह टंगी रह गयी कि क्या रिश्ते बदल जाने से आदमी भी बदल जाता है। जगन बाबू में बड़े राय की हू-ब-हू तसवीर उसी जज्बे के साथ नजर आना कोई इत्तिफाकी हादसा नहीं है, एक फरेब का खुलासा है क्योंकि बड़े राय सामंत थे और जगन बाबू आज़ादी के जबरदस्त दीवाने। जगन बाबू के दिलोदिमाग पर से इतनी जल्दी आज़ादी की दीवानगी का भूत कैसे उतर गया और वह कैसे बड़े राय की शक्ल-सीरत का हौसला अपने में पैदा कर बैठे। शुबहा आम मलते हुए देखने लगा कि कहीं बड़े राय ने जगन बाबू के रूप मे तो जन्म नहीं ले लिया है।

अंत मे आते-आते भास्कर राय सारे उपन्यास की सीवन उधेड़ता हुआ बतलाने लगता है कि भास्कर राय पिता हो जाय या बेटा रहे—मूलत भास्कर राय ही है। मुल्क आज़ाद हुआ लेकिन लोग तो वही रहे भले ही वे ब्रितानी सम्राट की पूजा से जनतंत्र के जनक या भाग्य विधाता बनने की यात्रा तय कर चुके हों। तब भी दरोगा आकर हड़िया देता था, अब भी हड़िया देता है—बस अंतर इतना ही है कि तब वह ताज का नौकर था अब जनतंत्र का, यानी हमारा-आपका नौकर—कहो तो सुनता नहीं! तब बच्चे अंग्रेजी स्कूल मे उनकी भाषा पढ़ते थे अब अपने स्कूलों मे पढ़ते हैं! ...... "पोशाक बदल लेने से मानसिकता यानी व्यक्ति नहीं बदलता।"[1] वही हुआ लगता है, इसी कारण वह व्रण अपनी जगह पर मुवाद देता टीस रहा है लाइलाज नासूर की तरह। ऐसा इत्तफाकन नहीं हुआ बल्कि इशरत और इशरतगाह के दबे पड़े ख्वाबों को हवा मिल लग जाने से हुआ। इस प्रकार गिरिराज जी लोकतांत्रिक मानसिकता की कलई बड़े इतमीनान से जाड़ने के पूरी पक्की कार्रवाही कर लेने के बाद खोलने बैठते हैं। एक ढहती इमारत के उस दस्तावेज को पेश करने मे वे पूर्णत सफल सिद्ध हुए हैं, जिस पर अपना लोक भवन खड़ा किया गया है।

गिरिराज जी ने शुरू मे यह प्रश्न उठाया है कि कई बार लेखक अपनी मुक्ति के लिए लिखता है और अपने नये-पुराने समाज की पहचान के लिए भी। इस उपन्यास का अंत भी उपन्यासकार इन शब्दों से ही करता है कि कभी न कभी तो प्रजा होने के अहसास से जनतंत्र के भाग्य विधाता बनने के भ्रम से सब मुक्त होंगे। —सवाल यही है, कब? इस प्रकार गिरिराज जी ने जनचेतना को एक नयी दिशा मे सोचने के लिए आमन्त्रित किया है और बहुआयामी अर्थों मे रिश्तों के व्यवहार को रूढ़ परम्पराओं से मुक्त कराने की दिशा में प्रयत्न किया है। यथार्थत उपन्यास का यह पक्ष सबसे सुदृढ़ और सबल बनकर उभरा है।

---

१. ढाई घर—गिरिराज किशोर पृ सं. ४००

यहां "ढाई घर" की भाषा के संबंध में विचार करना जरूरी है क्योंकि उन्होंने भाषा की जंग खाये सामंती ढांचे से लोकवादी ढांचे में बदलने की भी भरपूर कोशिश की है। इसमें दो राय नहीं है कि अनेक खास प्रचलित कहावतों और तत्कालीन मिजाजपोशी के लिए प्रयुक्त होने वाली शब्दावली को पुनः जीवित कर दिया है, जिससे पाठक के साथ पुरानी हवेली के झरोखे और दरवाजे खुलते हुए महसूस हुए हैं। उनमें से आती हुई गर्देदार बासी हवा का एहसास भी हुआ है। उसी से, कहीं दूर से ही सही, यह अनुभूति भी होने लगती है कि राय परिवार की दुर्दशा का संबंध देश की दुर्गति से भी जुड़ता है।

गिरिराज किशोर ने व्याकरण की छूट का भरपूर लाभ भी उसी तरह उठाया है जिस तरह जगन बाबू ने आज़ादी के बाद के भारतीयकोष का। 'जातियों' को लिया है और वहीं जातियों के लिए 'जातों'[1] को भी 'जब' के बाद 'तो' का प्रयोग खूब किया है।[2] 'पेशाब' शब्द का प्रयोग जरूर अखरता है—मुझे हमेशा लगा कि मैं तो उनके पेशाब से पैदा हुआ हूं।[3] जैसे ही उन्होंने उसकी तरफ घूमकर देखा तो उसका पेशाब निकल गया।[4] —यहां तक कि उसका पेशाब निकल गया।[5] इससे बचा जा सकता था। लोकोक्तियों का "ढाई घर" में अत्यंत सार्थक और सशक्त प्रयोग हुआ है। यथा—

हाथी डोले गांव-गांव, जिसका हाथी उसका नाव (नाम)[6], शहसवार गिरते हैं मैदान-ए-जंग में[7], अपना हुक्का अपनी मरोड़, पिया तो पिया नहीं तोड़ दिया[8], पाजामा ढीला था तो दौड़ के वास्ते काहे कूद पड़े[9] इत्यादि।

सूक्तियों की दृष्टि से यह उपन्यास एक बार "बाणभट्ट की आत्मकथा" (हजारीप्रसाद द्विवेदी) और "गोदान" (प्रेमचंद) की याद दिलाने लगता है। हालांकि सूक्तियों की बानगी और उनकी अदा में ताज़गी भरा गहरा अनुभव छलकता प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ—

(क) संघर्ष ही अनुभव की फसल है।[10]

(ख) तब आदर्श मूल्य था, अब मूर्खता है।[11]

(ग) स्त्री का दुख तो जिंदगी का पर्याय बनकर उसके अंदर समा जाता है, पुरुष का दुख सबको बहा ले जाता है।[12]

---

१. ढाई घर—गिरिराज किशोर : पृ. सं. ४

२ ढाई घर—गिरिराज किशोर : पृ सं. क्रमश. ४, ६, १२, १५, १६, ३०, ७३, ७६, १७१, २७५, २८८ आदि।

३-५. वही : पृ. सं. क्रमशः २, १७, ६६, ३४५

६-१२. वही : पृ सं. क्रमशः ११, ६२, ६३, ८१, ९३, ११६, २८२ आदि

(घ) जब भावनाएं सूक्ष्मता की ओर जाने लगती हैं तो शरीर अनुपस्थित होने लगता है।[1]

(ङ) जिन लोगों में अपने अस्तित्व का अहसास गहरा होता है वे खुलकर हंस नहीं पाते।[2]

"ढाई घर" का भाषा शिल्प और शैली प्रभाव सबल जुड़ा और सशक्त प्रतीत होता है। कथानक के तारतम्य टूटने या बिखरने की उपन्यासकार की आशंका निर्मूल सिद्ध हुई है, क्योंकि कथानक की बुनावट घुमावदार और रससिद्ध होने से निरंतर जिज्ञासा बनी रहती है। इसमें भाषा का सम्यक व्यवहार बहुत सहायक रहा है। दूसरे अन्याय-शोषण की सुदीर्घकथा एक लम्बे समय तक चलने वाली उस की मानसिकता में मदद करती रही है। बीच-बीच में प्रगल्भोद्भावना का नव मिजाज पाठक-मन को बराबर आकृष्ट करता रहा है और साथ में उसे झकझोरता भी रहा है।

इस अन्तर्संघर्ष ने कुछ ऐसे प्रश्नों को भी उठाया है जिसके उत्तर की अपेक्षा उपन्यासकार से ही की जा सकती है। यही कारण है कि मैंने श्री गिरिराज किशोर से सीधे प्रश्न किये हैं। मुझे लगता है कि उनके दिये उत्तरों से इस उपन्यास की आत्मा और उसके रचाव को समझने में अवश्य मदद मिलेगी।

प्रश्न—"ढाई घर" पूरा करने पर आपको कैसा महसूस हुआ?

गिरिराज किशोर—हर रचना का पूरा करने के बाद एक तरह के सतोष और निवृत्ति का अनुभव होता है। कुछ दिन बाद उसकी अच्छाइयां और बुराइयां भी ध्यान आने लगती हैं। क्योंकि कभी भी कोई रचना अपने आप में न पूर्ण होती है और न सतुष्ट करने वाली। हर रचना के बाद लेखक उससे बेहतर रचना लिखने का प्रयत्न करता है।

प्रश्न—"ढाई घर" के किन पात्रों में आपकी सर्वाधिक उपस्थिति रही या वे आपसे सर्वाधिक जुड़े रहे?

गिरिराज किशोर—दरअसल लेखक अपनी रचना के हर पात्र में तोला-माशा और रत्ती में बटा हुआ है। कई बार वह कहीं नहीं होता और सब पात्रों और स्थितियों में मौजूद होता है। जहां तक मेरा सवाल है—मैं बड़े राय में भी हू, भास्कर राय में भी हू, रहमतुल्ला आदि छोटे पात्रों में भी हू और नयी पीढ़ी के उस पात्र में भी हू जो नये तरह से सोचते हुये भी आगे नहीं बढ़ पाता है।

प्रश्न—आपने एक साथ तीन पीढ़ियों को क्यों लिया? इसके पीछे आपका क्या मन्तव्य रहा?

गिरिराज किशोर—तीन पीढ़ियों को उठाने के पीछे हर पीढ़ी की अलग-

१-२ तक . ढाई घर : गिरिराज किशोर पृ. स क्रमश. ३९८, ३९०, ३८१, आदि।

अपना पक्षपात है और उनका अन्तर्विरोध है जो इस उपन्यास के माध्यम से उठे हैं। नयी पीढ़ी को परिस्थितिजनित आस्था देने वाली पुरानी पीढ़ी की इतना अन्तर्विरोध जो हर प्रकार की बेचैनी और अपमान के बावजूद उसे छोड़ते नहीं बनते हैं।

प्रश्न—आप उपन्यास को एक समाज शास्त्रीय अध्ययन भी मानते हैं। तो क्या इस उपन्यास में भी आपका वही दृष्टिकोण रहा है ?

गिरिराज किशोर— इस प्रश्न का उत्तर मैंने भूमिका में भी दिया है। यह समाज विज्ञानमूलक उपन्यास है जिसमें समाज को ही पहचान बनती है और लेखक तो अपने भावों की अभिव्यक्ति करके माध्यम मात्र ही है। बेहतर हो कि आप इस सन्दर्भ में मेरा पूर्व प्रकाशित उपन्यास 'जुगलबंदी' और 'लोग' भी पढ़कर देखें, यदि संभव हो।

प्रश्न— क्या ? इसमें अतीत, वर्तमान साथ-साथ अनुस्यूत हुआ है।

गिरिराज किशोर—क्या अतीत और वर्तमान हमारे और आपके जीवन में मिला-जुला नहीं होता। जो जीवन में है वही उपन्यासों में है।

प्रश्न— आप उपन्यास लिखने से पूर्व क्या योजना बनाते हैं या नोट्स तैयार करते हैं ?

गिरिराज किशोर मेरे साथ हमेशा ऐसा होता है कि मैं बिना नोट्स लिये या डिजाइन किये ही उपन्यास लिखता हूं और वह अपना विस्तार अपने आप लेता चला जाता है।

प्रश्न – आपने "ढाई घर" में अध्याय या अंक क्यों नहीं दिये ?

गिरिराज किशोर— जहां तक अध्याय या अंक देने का प्रश्न है, शायद जीवन को भी हम अध्यायों और अंकों में नहीं बाँटते। वे भी स्वतः ही धारा की तरह ऊपर नीचे बहता रहता है।

मैं समझता हूं कि "ढाई घर" के साथ की गई यह अनौपचारिक यात्रा आपके मानस में अपने समय के और अनेक प्रश्न उभारेगी। क्योंकि यह समाजशास्त्रीय अध्ययन वर्तमान से जुड़ा है और वर्तमान के पास से गुजरे हाल के अतीत से भी। इन दोनों के समन्वय से जो बना-बिगड़ा है, वही काल-प्रश्न इस उपन्यास की सामान्य नियति बना है। असामान्य को सामान्य और सामान्य में असामान्य का अतर्द्वंद्व जब एक दूसरे का स्थान लेता है तब पीढ़ियों का आमना-सामना होता है। नयी पीढ़ी जब अपने को भंवर में भूलता पाती है तब उसे ही अपनी नियति मान लेती है। वह इस अनिश्चय के सांप को न मार पाती है और न पाल सकती। उसके अंदर पलता यह भूखा सर्प अपनी चिरी हुई जीभ से अंदर से अंदर निरंतर चाट रहा है।[1] रघुवर

[1] द्रष्टव्य— ढाई घर : गिरिराज किशोर पृ सं. ३६६

व्यंग्य

पारखियों के पारखी धाकड़जी

हरमन चौहान

मेरा एक लंगोटिया यार है—घूकलदास छाजेड़। गाँव की प्राइमरी स्कूल से लेकर शहर के कॉलेज तक हमने शिक्षा साथ-साथ ग्रहण की। लेखन में मेरी रुचि शुरू से ही रही। इधर-उधर अखबारों में मेरी रचनाएं छपती और गोष्ठियों या कवि-सम्मेलनों में मेरा चर्चित नाम देखकर उसकी भी साहित्य में रुचि बढ़ने लगी। उसके पिता जौहरी की दुकान पर नौकरी करते थे और वह चाहते थे कि उनका होनहार सपूत जौहरी बने। इसीलिए मेरी संगत से उसके पिता चिढ़ते भी थे। मैं उनके घर तब जाने से भी कतराया करता था।

इधर मेरे मित्र घूकलदास छाजेड़ को लिखने का शौक चर्राया तो 'नव लेखक साहित्य मंच' की स्थापना कर डाली और करने लगे गोष्ठियों पर गोष्ठियां। मुझे तो वंचित रखा सो रखा, लेकिन शहर के जाने माने साहित्यकारों को भी जान-बूझ कर अलग रखा। उसने अपना उपनाम छाजेड़ की जगह 'धाकड़' रख लिया और फिर दो अक्षरों का अपना संक्षिप्त नाम 'घूंकल धाकड़' रख लिया। उसने आठ-दस कविताएं, आठ-दस गीत क्या लिख लिये कि शहर भर में तमाम कवि, गीतकार अब उसे छुटभइये लगने लगे थे। अपने को जो बड़के साहित्यकार समझते थे, वे ऐसे छुटभइये साहित्यकार की जगह-जगह हंसी मजाक उड़ाया करते थे।

कॉलेज के बाद बेकारी में छुटभइया अपनी औकात समझ गया। उसने कविता-गीत छोड़कर कहानियां लिखना शुरू कर दिया। लेकिन साठोत्तर उम्र के सठियाये साहित्यकारों ने इस विधा में उनकी दाल नहीं गलने दी। कुछ वस्तुस्थिति भी ऐसी थी कि उनकी हर रचना बोदी थी। छाजेड़ पट्ठा अपने बाप की इच्छानुसार जौहरी तो नहीं बन सका, लेकिन एक अदद शौहर बनने में उसे कोई एतराज नहीं हुआ। शादी में तो उसने सभी साहित्यकारों के साथ मुझे भी बुलाया था, लेकिन

आलोचना शुरू कर देता है। कभी कभी नाराज होकर वह छापने का मन देता है, तब उसे मनाने के लिए मुझे मजबूरन उसके घर जाना पड़ता है।

एक तंग और गंदी गली में उसका मकान है। उसके पास बैठो तो मुंह से तम्बाकू की बदबू आती रहती है, फिर भी वह कुर्सी के साथ मूछ उठाकर [illegible] की तारीफ और दूसरों की आलोचना करता रहता है।

जिस प्रकार गिद्ध मरे हुए पशु की लाश उधेड़ता रहता है, उसी प्रकार वह भी लेखकों की कृतियों की लाश उधेड़ता है। वह स्वयं समीक्षक है या नहीं, पर नहीं लगता। लेकिन वक्त आने पर वह आलोचक या [illegible] को या अपनों [illegible] को भी नहीं बख्शता। राम जाने वह गधा है या घोड़ा? परन्तु उसकी लाश उठाने वाला कोई नहीं, इतना मैं जानता हूं।

कुछ परिचित लोग उसे "हाफ मैड समीक्षक" और कुछ "आलोचक सिंह" कह कर पुकारते हैं जबकि मैं उसे "बधुवर" या "पारखी" के अलावा कुछ नहीं कहता। इसीलिए वह मुझसे नाराज कम और खुश ज्यादा रहता है। बढ़िया साहित्य वह रच नहीं सकता। पता नहीं, वह इसीलिए अपनी धाक जमाने के लिए आलोचक बना हो? वह दिन भर तो अखबारों के दफ्तर में रखड़ता रहता है और प्रकाशकों के इर्द-गिर्द मंडराता रहता है। सच भी है कि उसे कविता या कहानी का ककहरा भी नहीं आता, लेकिन पुस्तकों की परख करने में पूरा पारखी है। बेचारे साहित्यकारों के लिए तो जैसे साक्षात यमराज ही समझो।

एक बार मैंने उससे पूछा—"बधुवर! पुस्तकों की वाकई तुम्हें धाकड़ परख है। लेकिन तुम तमाम प्रगतिशील लेखकों से क्यों दुश्मनी मोल ले रहे हो? यह दुश्मनी तुम्हें कभी महंगी पड़ सकती है।"

वह हँस कर बोला—"क्या तुम भी प्रगतिशील हो?" मैंने कहा—"नहीं बधुवर! मैंने कभी कोई प्रगति की ही नहीं तो प्रगतिशील कैसे हो सकता हूं?" वह क्रोध में भर कर बोला—"फिर क्या हो?" मैंने ठण्डे मिजाज से उत्तर दिया—"कुछ लोग मुझे वामपंथी और कुछ दामपंथी कहते हैं।" वह हँस कर बोला—"तुम न वामपंथी हो, न दामपंथी बल्कि मेरे विचार से तुम कभी पजाबपंथी और कभी सिंहपंथी लगते हो।" मैंने कहा—"बधुवर, सच कहूं! मैं तो मात्र एक अदना व्यंग्यकार हूं, इसके सिवाय कुछ भी नहीं हूं।" वह फिर गुस्से से बोला—"तुम झूठे हो, मक्कार हो! तुम जैसे पूंजीपति कार वालों ने ही इस शहर की कच्ची सड़कों पर धूल उड़ाई है और यह धूल हर रोज शहरवासी फांक रहे हैं। यह अच्छी बात नहीं है। तुम साहित्य में भी धूल उड़ा रहे हो। इस धूल पर मुझे आलोचना का कोलतार बिछाना ही पड़ेगा एक दिन!"

मैंने क्षमा मांगते हुए कहा—"बधुवर, आप बड़े, मैं छोटा। साहित्य की धूल

बढ़ती हुई नोकझोंक देख कर, मैं वहां से चलता बना। बहुत दिनों बाद मेरा एक बार फिर उनके घर जाना हुआ, जाना इसलिए हुआ कि उनके लड़का हुआ, इसलिए मैंने दोनो को बधाई दी। धाकड अपने लड़के को बताते हुए बोला—"देखो इसकी ग्रांखें भूरी हैं। दोनो भौंहों में काव्यात्मक साम्य नहीं है। इसकी नाक मुक्त जैसी न होकर अतुकान्त कविता सी लम्बी है। होंठो पर दोहा या सोरठे जैसी तुक नहीं है। गाल पर सौन्दर्यबोध नहीं। देह पतली, सावली यानी कुल मिला कर यह स्वस्थ यानी उत्कृष्ट कृति नहीं कही जा सकती है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह किसी की पहली-पहली एक बेहद कमजोर और घटिया कृति है।"

पास में बैठी पत्नी ने खीझ कर कहा—"अजी, आप भूल रहे हैं, यह आपकी ही कृति है।"

धाकडजी ने साफ इंकार कर दिया—"असंभव! ऐसी कृति मेरी हो ही नहीं सकती।"

पत्नी अपना माथा ठोक रही थी और धाकड चिंतन में डूबा जा रहा था। दोनों एक दूसरे की आलोचना करने में लगे थे। मैंने धाकड के हाथों से नन्हे आलोचक को भाभी के हाथ में थमाया और बिना कोई टीका टिप्पणी किये चलता बना! घर जाकर मैंने श्रीमती को यह सब बताया तो उसने उनके घर आगे से कभी न जाने की मुझे हिदायत दे दी, जिसका मैं आज तक अक्षरशः पालन कर रहा हूँ। आपके शहर में भी ऐसा पारखी होगा अवश्य? क्या कभी आप भी ऐसे पारखियों के पारखी से टकराये हैं? यदि नहीं तो यह आपका सौभाग्य है?

ठ

विश्वास

नसरुल्लाह

पात्र परिचय-

१. पुरुष-१ [रामशरण]	४ स्त्री-२
२ पुरुष-२ [रहीम]	५ लडकी-१
३ स्त्री-१	६ लडकी-२

७ पुलिस एव यात्री के रूप मे आवश्यकतानुसार अन्य पात्र ।

[एक गरीब वस्ती का आभास देता वातावरण । तग गलियो मी चहल-पहल । चाय की दुकानो पर चुस्किया लेते लोग । सफाई कर्मचारी अपने नित्य सफाई अभियान मे जुटे हुये । सडक पर खेलते बच्चे । सडक के पास हैड पम्प । सडक के आमने-सामने जीर्ण-शीर्ण अवस्था मे पहुचे मकानो का आभास । उनमे से एक मकान । मास्टर रामशरण स्कूल जाने को तैयार हो रहे हैं । सामने से उनकी पत्नी हाथ मे नाश्ता और चाय लिये आती है ।]

ी-१ . यह लीजिये आपका नाश्ता । आज तो स्कूल को देर नही होगी । चाहे कोई मास्टर समय से स्कूल पहुचे या न पहुचे लेकिन आपको समय से पहुँचना ।

ामशरण . (रुककर) कोई क्या करता है इससे मुझे कोई वास्ता नही । लेकिन मेरे अपने कुछ सिद्धान्त है जिनसे मैं कभी समझौता नही कर सकता । आखिर बच्चे देश का भविष्य है । और मै भविष्य के साथ खिलवाड नहीं कर सकता ।

्त्री-१ (तुनक कर थोडे रोष से) भविष्य ? इस भविष्य को तो नेताओ के पास ही बनने बिगडने के लिए रहने दो । तुम्हारे सिद्धान्त एक बेहतर

जिन्दगी नहीं दे सकते। दूसरे मास्टरों को देखिये, कम से कम मूल जाता और ट्यूशन से बेहिसाब कमाया।

रामशरण (मुस्कराते हुये) आज सुबह-सुबह फिर शुरू हो गई। क्या बात है, खाना तैयार नहीं हुआ। जरा आवाज नीचे रखो। बच्चे जाग जायेंगे। मुनि और पप्पा क्या कर रही हैं? आज कालिज नहीं जाना उन्हें।

स्त्री १ अपने कमरे में तैयार हो रही हैं। थोड़ी उनकी चिन्ता भी करो। जवान बेटियों को घर पर बिठा रखा है। आखिर कब तक……

रामशरण (बीच में काटते हुये) क्या करूँ। कोशिश तो कर ही रहा हूँ। कोई अच्छा घर ही नहीं मिल रहा। जहाँ भी बात करो लड़की की बात बाद में पैसे की पहले होती है।

स्त्री-१ मुझे तो रातों नींद नहीं आती। घर में दो बेटियां हैं और दोनों शादी के काबिल।

रामशरण तुम चिन्ता मत करो। सब कुछ ठीक हो जायेगा।

स्त्री-१ हाँ, याद आया। कल बुआ आयी थी। बता रही थी, चितरंजन जी के दो लड़के हैं। घर भी अच्छा है और फिर उनकी मांग भी कुछ नहीं है। खाते-पीते घर के लोग हैं।

रामशरण (मुंह बनाते हुये) खाते-पीते घर के लोग।

स्त्री-१ क्यू क्या हुआ।

रामशरण खाते-पीते घर के लोग ही सबसे ज्यादा भूखे होते हैं।

स्त्री-१ यानी कि जाओगे नहीं।

रामशरण ठीक है बाबा, आज स्कूल से लौटते वक्त उनके घर होता आऊंगा। लेकिन मुझे विश्वास नहीं कि बात बन जायेगी। वो बड़े लोग हैं हमारी उनके सामने क्या बिसात।

स्त्री-१ आप मिल तो लीजियेगा। हो सके तो रहीम भाई साहब को साथ लेते जाना। सुना है चितरंजन जी से उनकी अच्छी दोस्ती है।

रामशरण हाँ, एक बार स्कूल में जिक्र भी कर रहा था। वैसे मैंने उससे भी कह रखा है कि कोई अच्छा सा रिश्ता नजर आये तो बात कर ले। मुझे यकीन है कि वो रिश्ता ढूंढ ही लेगा। उसे मुझसे ज्यादा चिन्ता है हमारी बेटियों की।

स्त्री-१ हो भी क्यू ना। आप लोगों का संबंध तो पीढ़ियों से चला आ रहा है।

रामशरण खैर मैं अभी चलता हूं, रहीम इंतजार कर रहा होगा।

[रामशरण कंधे पर झोला लटकाये निकलता है। सामने से रहीम

निकलता है। दोनों चलने का अभिनय करते हैं।]

रहीम : (पुकारते हुये) जल्दी चलो शरण, कहीं बस न छूट जाये। वैसे भी स्कूल जल्दी पहुंचना है। आज मेरी ड्यूटी परीक्षा हॉल मे लगा रखी है।

रामशरण : चलते हैं यार, हाँ याद आया। आज लौटते हुये चितरंजन जी के घर भी होकर आना है। सुना है उनके दो लड़के विवाह योग्य हैं। और फिर तुम्हारी उनसे जान-पहचान भी है।

रहीम : हां, है तो सही। (सोचते हुए) क्या आज का दिन टल नहीं सकता। किसी और दिन……

रामशरण : क्यूं आज क्यों नहीं। कोई जरूरी काम है तुम्हें।

रहीम : (चिन्ता से) नहीं यार, मैं तो सावधानी की वजह से कह रहा था कि…

रामशरण : कैसी सावधानी।

रहीम : आज कुछ नेता शहर में रैली निकाल रहे हैं। बाद मे भाषण बाजी भी होगी। और तुम तो जानते ही हो पिछले तीन-चार महीनों से रैली और सभाओं के नाम पर इन नेताओं द्वारा जनता को सिर्फ आक्रोश, भय और तनाव ही परोसा जा रहा है।

रामशरण : हाँ, तुम ठीक कह रहे हो। कभी-कभी तो लगता है जैसे यह बहुरंगी इस समाज के आधार पर भरपूर चोट करने को तैयार हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि जनता सब कुछ जानते हुये भी इनके बहकावे में कैसे आ जाती है।

रहीम : सब ऐसे नहीं हैं, चंद लोग हैं जो अपने स्वार्थ के लिए यह सब करवाते हैं।

रामशरण : क्या ऐसे लोगों का मुकाबला नहीं किया जा सकता।

रहीम : किया जा सकता है। लेकिन आगे कौन आये। गरीब आदमी को अपने पेट से फुरसत नहीं, बुद्धिजीवी को अपने सेमिनारों से और फिर नेताओं ने कब जनता के बारे में सोचा है। जब दंगे होते हैं तो गरीब आदमी मुकाबला करने की बजाय अपनी जिन्दगी भर की कमाई को लेकर भागने की सोचता है। उसे सिर्फ अपना झोपड़ा जलता दिखाई देता है, अपने बच्चे दिखाई देते हैं जिन्हें लेकर वह दर-बदर हो नंगे पैर दौड़ता चला जाता है।

रामशरण : क्या यह सिलसिला कभी खत्म नहीं होगा।

रहीम : होगा।

यात्री-१ : (घबराते हुये) मेरी पत्नी ने तो आज मना भी किया था कि ऑफिस मत जाओ। शहर मे तनाव है लेकिन · ···

यात्री-२ : बच्चे स्कूल गये हुए हैं। वहां फसाद न हो गया हो।

यात्री-३ : महीने के आखिरी दिन चल रहे हैं। घर मे पूरा राशन भी नहीं है।

रहीम : शरण जल्दी करो। अब सिवाय घर लौटने के कोई चारा नहीं। इस बार स्थिति काफी गम्भीर दिखाई दे रही है।

रामशरण : ईश्वर करे सब कुछ ठीक हो।

एक : सारा शहर जल रहा है।

दो : इन्सानी गोश्त भूना जा रहा है।

तीन : दरिंदो ने अपने पंजे खून मे डुबो लिये हैं।

चार : सारा शहर बूचड़खाना बन गया है।

पाच : दगाई अपना खेल खेल रहे है।

एक : औरतो की चीखें

दो : तार-तार होती उनकी अस्मत।

तीन : काम क्रीड़ाओ के आसनो को उतारती वीडियो फिल्मे और भव्य बेड-रूम्स की शोभा बनती ये वात्सयायनी कलायें।

चार : मैं सब मे हू, सब मुझ मे हैं।

पाच : मैं ही जीता हू, मैं ही मरता हू। मैं ही कृष्ण हू मैं ही दुर्योधन। मैं ही राम हू, मैं ही रावण।

एक : गरदन मे जलता टायर लटकाये भागते राम-रहीम।

दो : जिन्दा जलाये जा रहे, तलवारो में टुकड़े-टुकड़े होते राम-रहीम।

तीन : चाकूओ से गुदा लहू-लुहान ब्रह्म।

[अचानक मच पर सन्नाटा। राम और रहीम का बदहाल अवस्था में प्रवेश। दो पात्र पुलिसिया मुद्रा मे चक्कर लगा रहे हैं। दोनो डरते से आगे आते हैं।]

रहीम : (भयभीत सा) हमारे मोहल्ले में धुए का गुबार उठ रहा है।

रामशरण : (आशंकित सा) लगता है कुछ अनहोनी हो गई है।

रहीम : हमे अपने घर जल्दी पहुच जाना चाहिए।

रामशरण : अगर श्रुति और संध्या कॉलेज चली गई होंगी तो उनका क्या होगा।

रहीम : कहीं अमन घर से न निकला हो।

रामशरण कब ?

रहीम जब दोनों तरफ से लोग भीख मांगने की स्थिति में पहुंच जायेंगे और एक दूसरे से भीख भी नहीं मांग सकेंगे। दोनों तरफ का सब कुछ लुट चुका होगा। आने वाली पीढ़ियां नफरत और आवेश के बीच पैदा होंगी और मनुष्यता को मिटाने के लिए आमादा रहेंगी तब।

रामशरण शुक्र है, अभी तक हमारा इलाका इनसे बचा है।

रहीम हां, अभी हमारे दुःख-सुख साझे हैं। हमारी जरूरतें, आकांक्षाएं साझी हैं। लेकिन ऐसे लोगों की कमी नहीं जिनका पेशा ही उजाड़ना है।

रामशरण कौन लोग ?

रहीम स्वार्थी और पत्थर दिल लोग। पैसे वाले लोग जिनका धर्म-ईमान सब कुछ पैसा है। पता नहीं इस बस्ती पर भी किसी पैसे वाले की नजर लगी हो और उसे हमारी लाशों, जलते घरों पर कोई शानदार बहुमंजिली इमारत, कमर्शियल काम्प्लेक्स या एयर कंडीशन बाजार नजर आ रहा हो।

रामशरण लो बस आ गई।

[कुछ पात्र कतार में खड़े होकर बस का आभास देते में आते हैं। दोनों चढ़ने की मुद्रा में उस कतार के पीछे हो लेते हैं। कतार मंच का एक चक्कर लगाती है। अचानक तेज ब्रेक लगने की आवाज आती है।]

यात्री-१ (लापरवाही से) क्या हुआ भाई, इतना तेज ब्रेक, मारोगे क्या।

यात्री-२ (गुस्से से) इन मिनी बस वालों ने तो हद कर रखी है। बिना किसी की परवाह किये हवाई जहाज की तरह दौड़ाते हैं बसों को।

यात्री-३ (व्यंग्य से) कोई पुलिस वाला होगा। पैसा-वैसा ऐंठ-आठ कर छोड़ देगा।

यात्री-१ : (भयभीत सा) सामने धुएं का गुबार उठता दिखाई दे रहा है।

यात्री-२ : (व्यंग्य से) किसी टैम्पू से निकल रहा होगा।

यात्री-३ भगदड़ सी मची है।

रहीम : ये लोग कहां भागे जा रहे हैं।

रामशरण : लगता है कुछ गड़बड़ है। दुकानों के शटर गिर रहे हैं। लोग इधर-उधर भाग रहे हैं।

[अचानक गोलियां चलने, पुलिस जीपों, दमकलों के दौड़ने की आवाजें]

रहीम : लगता है शहर में दंगा हो गया है।

मधुमती : अगस्त, १९९१

रामशरण : क्यूं ।

रहीम : उसे अभी इलाके में जाना था जहां दंगा भड़का है । मुझे बहुत डर लग रहा है ।

पुलिस (बीच में डंडा लगाते हुये, अकड़ कर) ऐ कहां जा रहे हो ? पता नहीं है क्या ?

रामशरण क्या ?

पुलिस इधर कर्फ्यू लगा है । काफी लूटपाट और आगजनी हुई है । कहीं तुम भी तो दंगाई नहीं ।

रहीम . नहीं साहब, हम तो अध्यापक हैं । हमारे हाथों में कलम होती है तलवार नहीं ।

पुलिस ऐसा है मैंये, यह तलवार भी कलम के बल पर ही चल रही है । एक बेकसूर को इसी कलम से फांसी दी जाती है, एक गुनाहगार को बलात्कार के जुर्म से इसी कलम से मुक्त कर दिया जाता है । और मैंये सच कहूं तो इस कलम से मुझे भी डर लगता है ।

रामशरण क्यूं ।

पुलिस . (हंसते हुये) इसलिए कि मेरी सी आर पर यही चलाई जाती है । इससे मरता कोई नहीं पर जिन्दा रहने लायक भी नहीं रह जाता । पत्रकार मैंये भी तो इसे मुगदर की तरह घुमाते फिरते हैं । जो लपेटे में आ जाये उसका तो भगवान ही मालिक है ।

रहीम इससे धार्मिक ग्रंथ, ऊंचा नैतिक साहित्य भी तो लिखा जाता है ।

पुलिस : और उस साहित्य के बारे में क्या कहोगे जो आदमी-आदमी को जुदा करने के लिए जहरीले भाषणों, उदाहरणों के रूप में लिखा जाता है ।

रामशरण हां साहब आपने ठीक ही कहा । फिर एक बार यह सिद्ध हो गया है कि तलवार की ताकत कलम की ताकत से ज्यादा प्रभावी है । वो लोग एक बार फिर जीत गये जिनकी सोच विध्वंसात्मक है । और वो लोग हार गये जिनकी सोच सरचनात्मक है । प्लीज हमें जाने दीजिये ।

पुलिस : देखो, अन्दर जाना बेहद मुश्किल है । अन्दर चाकू-बाजी और गोला-बारी हो रही है । स्थिति अभी कन्ट्रोल में नहीं आयी है । उम्मीद है शाम तक आ जायेगी । जब तक तुम इंतजार करो । साहब की गाड़ी गश्त के लिए जायेगी उसमें बिठा देंगे । लेकिन ··· · · ·

रामशरण लेकिन क्या ?

पुलिस : देखो काम बहुत मुश्किल है । साहब को मनाना पड़ेगा·······

जल्दी मरना नहीं लिखा था। आज दंगाइयों ने हमारे घर पर हमला बोल दिया।

रामशरण (सिर पकड़ कर बैठ जाते हैं) हे भगवान ....

स्त्री-१ (रोते हुये) उन्होंने हम पर पत्थर फेंके और आग लगाने की कोशिश भी की।

लड़की-१ और बाबूजी वो अमन है ना, उसे.......

रामशरण क्या हुआ उसे ?

लड़की-२ : उसे किसी ने चाकू मार दिया।

रामशरण किसने ?

स्त्री-१ : दंगाइयों ने। आज एक उन्मादी भीड़ हाथों में हथियार लिये इस तरफ चली आई। उन्होंने हमारा दरवाजा तोड़ने की कोशिश की।

लड़की-१ अमन और उसके दोस्त भीड़ को देखकर चले आये और उन्होंने दंगाइयों को समझाने की नाकाम कोशिश की।

रामशरण कौन लोग थे वो। क्या इसी मुहल्ले के थे।

लड़की-२ नहीं, इस मुहल्ले के तो नहीं थे, पर हो सकता है कि यहां के लोगों का भी उसमें हाथ हो।

रामशरण फिर क्या हुआ।

स्त्री-१ : उनमें आपस में कहा सुनी हो गई। भीड़ में कुछ गुंडों ने अमन और उसके दोस्तों को बुरी तरह घायल कर दिया और हमारे घर का दरवाजा तोड़ने लगे।

रामशरण फिर ?

स्त्री-१ : अगर पुलिस नहीं आई होती तो न जाने आज क्या गुजर जाता। अब हमें यहां एक पल नहीं रुकना चाहिये।

रामशरण : (चिन्तित से) लेकिन जायेंगे कहां ? पीढ़िया गुजर गईं यहां रहते। और फिर जिन्दगी भर जो कुछ कमाया वो भी तो यहीं है।

स्त्री-१ कहीं भी। लेकिन यहां से दूर।

रामशरण : पास-पड़ौस वाले क्या कहेंगे।

स्त्री-१ : क्या कहेंगे और अब क्या कह सकते हैं ?

रामशरण . यहां से जाने का अर्थ उनके विश्वास को तोड़ना नहीं ?

स्त्री-१ क्या उन्होंने हमारे विश्वास को नहीं तोड़ा है ?

रामशरण . नहीं ....ऐसा हम कैसे कह सकते हैं, जब तक कि यकीन न हो

जाये। इन झगड़ो का एक कारण आपसी अविश्वास भी है। यहां के लोग ऐसा नहीं कर सकते। कौन लड़ना चाहता है ?

-१ : लेकिन यह धर्म का उन्माद है। पता नहीं यह कब भड़क उठे और हमें इसमें बहा ले जाये।

तरण कोई भी धर्म गरीब इन्सान के पेट को दो वक्त की रोटी मुहैया नहीं करवा सकता। हां यह रोजी रोटी का निमित्त बन सकता है ऐसे लोगों के लिए जो स्वार्थी, भ्रष्ट चरित्रहीन और वहशी हैं। जो अपने आपको धर्म का ठेकेदार कहते हैं। इनकी रोजी रोटी चलती है धर्म से। यही वह आग है जो धर्म को आधार बना कर गरीब के मुंह में रोटी का निवाला छीन कर उसके मुंह में अंगार भर देते हैं। यह धर्म की लड़ाई नहीं, जिजीविषा की लड़ाई है। अमीर-गरीब, नैतिक-अनैतिक, शोषक-शोषित की लड़ाई।

-१ तो क्या हम हाथ पर हाथ रखकर अपनी मौत का इंतजार करें।

तरण कानून और व्यवस्था नाम की भी तो कोई चीज है।

-१ : (घृणा से) जंगल राज है। मैंने अपनी आंखों से इन कानून और व्यवस्था के रखवालों को इन व्यवस्थाओं का खून करते देखा है। मकानों को जलाते और दुकानों को लूटते देखा है। देखा है मैंने इन्हें मासूम जिस्मों को रौंदते।

ी-१ क्या हमारे यहां पुलिस का पहरा नहीं लग सकता। यूं भी इस मुहल्ले में हम हैं भी कितने। हर एक दंगे के बाद लोग अपनी रिहाइश छोड़कर जाते रहे। लेकिन हम शायद किसी विश्वास के सहारे यहीं मौजूद हैं।

तरण - पुलिस का पहरा यानि अपने मोहल्ले वालों, अपने पड़ोसियों पर अविश्वास। नहीं यह ठीक नहीं। पीढ़ियां गुजर गईं हमें साथ रहते। कुछ सिरफिरे जो कि इस मोहल्ले के भी नहीं हैं उनकी वजह से पीढ़ियों के संबंध खत्म कर दूं। उनके विश्वास का खून कर दूं। ऐसा नहीं हो सकता।

-१ (बेबस सी) लेकिन हमें सुरक्षा चाहिए। घर में जवान बेटियां हैं, सामान है। और फिर हमारे आस-पास अपना भी तो नहीं, सब चौक के उस पार हैं। ऐसे में · ··

तरण मुझे सोचने दो। जल्दबाजी में लिया गया कोई भी फैसला हमारे लिए मुश्किलें खड़ी कर सकता है। रात घिर आई है। खाना बनाया या नहीं।

स्त्री-१ छोटी वाली बना रही है ।

[प्रकाश मध्यम हो जाता है । पार्श्व से गोलियों की आवाज़, अल्लाह हो अकबर, जय श्रीराम के नारे, मारो-काटो की आवाजें । प्रकाश पूर्णत: आलोकित । रामशरण, स्त्री तथा दोनों लड़कियां घेरा बना कर चिन्तित से बैठे हैं]

रामशरण आज पूरी तीन रातें बीत चुकी हैं । ठंड भी बेहद पड़ रही है ।

स्त्री-१ सारा शरीर दर्द से अकड़ रहा है । दो रात से सो नहीं सकी ।

लड़की-१ सोते कैसे ? सारी रात पत्थरबाजी होती रही । कभी गोली की आवाज, कभी नारे ।

स्त्री-१ तुम सो क्यूं नहीं जाते ।

रामशरण बाहर पुलिसिया बूटों की आवाज दिल पर पड़ती सी दिखाई देती है सोऊं कैसे ?

स्त्री-१ अब तो राशन भी खत्म हो चला है ।

रामशरण महीने के आखिरी दिन जो चल रहे हैं । तनख्वाह मिल जाती तो

स्त्री-१ एक अनजाना सा डर मेरी हड्डियों को टीस रहा है । हालात अब भी काबू में नहीं हैं । यदि यह सब यूं ही चलता रहा तो हम भूखे मर जायेंगे ।

रामशरण किसी से सहायता भी तो नहीं ले सकते । दरवाजा खोलने का मतलब है घर पर गोलियों की बौछार करवाना ।

स्त्री-१ फिर यहां और ज्यादा रहना भी ठीक नहीं । बस हम एक बार नदी के उस पार पहुंच जायें ।

रामशरण (चिन्तित सा) वहां तक भी कैसे पहुंचा जाये । घर में लड़कियों के लिए खरीदा हुआ दहेज का सामान भी रखा है जिसे पाई-पाई इकट्ठा करके खरीदा है । इसे यहां से कैसे ले जायेंगे । खाली घर रखना बुद्धिमानी नहीं ।

स्त्री-१ कुछ न हो तो किसी पुलिसवाले से ही बात कर लो ।

रामशरण ठीक (कुछ सोचते हुये दरवाजे की मुद्रा में) लेकिन हमें कुछ न कुछ तो करना ही होगा । यदि हम दंगाई या पुलिस की गोली से नहीं मरे तो भूखे जरूर मर जायेंगे । (उठता है)

स्त्री-१ कहां जा रहे हो ।

रामशरण कुछ करना ही है तो किसी पुलिसवाले से बात करता हूं ।

स्त्री-१ : (डरते हुये) जरा ध्यान से। रात गहरी हो चली है और फिर ...

रामशरण : ईश्वर मालिक है।

[रामशरण दरवाजे तक पहुंचता है, बाहर से बूटों की आवाज आ रही है। वह धीरे से दरवाजा सरकाता है। सामने पुलिसवाला है। दोनों की आंखें चार होती है। रामशरण उसे इशारे से अन्दर बुलाता है। पुलिसवाला घर में आ जाता है। सामने मकान की खिड़की से रहीम झांकता है। पुलिसवाले को रामशरण के घर में जाते देखकर अनजान भय से सिहर उठता है।]

रहीम : नहीं ...

स्त्री-२ : क्या हुआ। इतने डरे हुये क्यों हो। क्या किसी को मरते देखा है।

रहीम : नहीं।

स्त्री-२ : तो फिर।

रहीम : मैंने अभी-अभी एक पुलिस वाले को शरण के घर में जाते देखा है। यह अच्छे आसार नहीं। इसका क्या कारण हो सकता है।

स्त्री-२ : हो सकता है वे लोग अपने आपको असुरक्षित महसूस कर रहे हों।

रहीम : नहीं ... राम एक सुलझा हुआ, समझदार आदमी है। उसे मालूम है कि उसका यहां कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

स्त्री-२ : लेकिन पिछले दिनों जो कुछ हुआ और जो कुछ हो रहा है उससे यह नामुमकिन भी नहीं लगता।

रहीम : लेकिन वो सब यहां के लोग नहीं थे। और फिर हमारे बेटे अमन और उसके दोस्तों ने दंगाइयों का मुकाबला भी तो किया था। फिर भी

स्त्री-२ : डर एक ऐसी चीज है जो वो सब कुछ करवाने के लिए इंसान को मजबूर कर देती है जो वो नहीं करना चाहता।

रहीम : लेकिन यह हमारे विश्वास, हमारे सबंधों और आपसी भाईचारे पर आघात है।

स्त्री-२ : हो सकता है घर में कोई बीमार हो। सहायता के लिये पुलिसवाले को बुलाया हो।

रहीम : (आशंका से) मालिक करे ऐसा ही हो। लेकिन मुझे इन कानूनवालों पर कोई विश्वास नहीं।

स्त्री-२ : यह भी तो हो सकता है कि पुलिसवाला उसी जात का हो जिसके कि शरण भाई साहब हैं।

रहीम पुलिसवाले की कोई जात नहीं होती। ये रक्षक नहीं भक्षक होते हैं। काश, मैं शरण से मिल पाता। (कुछ क्षण बाद) अमन की हालत कैसी है?

स्त्री-२ . खून बहुत निकल गया है। कमजोरी है। सो रहा है। बुखार बहुत ज्यादा है। डाक्टर को दिखाना जरूरी है।

रहीम : कैसे दिखायें डाक्टर को। बाहर जाते हैं तो पुलिसवाले दस सवाल पूछेंगे कि जख्म कैसे हुआ? नहीं बनेगा तो दंगाई बना देंगे। दंगा में गिरफ्तार कर लेंगे। या फिर जबरदस्ती का कोई केस बना देंगे। तुम घरेलू दवा करती रहो और फिर कर्फ्यू हटने का इंतजार।

स्त्री-२ हालात दिन-ब-दिन बिगड़ते जा रहे हैं।

रहीम · मुझे तो शरण की चिन्ता हो रही है। सोचता हूं कोशिश करके एक बार देख आऊं। पता नहीं कोई बीमार ही हो।

स्त्री-२ लेकिन कैसे? मुझे तो यह मुमकिन नहीं लगता।

रहीम खैर, तुम सो जाओ। मैं कोई तरकीब निकालता हूं।

[प्रकाश लुप्त होकर पुन आलोकित होता है। रामशरण का घर। पुलिसवाला बन्दूक लिये बैठा है। पास ही शरण का परिवार बैठा है]

स्त्री-१ : (चाय का कप हाथ में) भैया तुम आ गये हो तो सहारा सा बन गया है।

पुलिसवाला . (कठोरता से) तुम चिन्ता ना करो। तुम्हारा, हमारे रहते कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

स्त्री-१ : अपने सहधर्मी होने की तो बात ही कुछ और है। क्या बतायें भैया घर में दो जवान बेटियां हैं, उनके दहेज का सामान है जो तिनका-तिनका इकट्ठा किया है।

रामशरण (चिन्तित) अब यह घर भी छोड़ कर जायें तो कहां। हम यहां रहने के लिए अभिशप्त हैं। यदि इस मकान को बेचा भी जाये तो इसकी ज्यादा कीमत नहीं मिलेगी। और तुम तो जानते ही हो अच्छी कोलोनी में मकान खरीदना कितना मुश्किल है। और फिर यह हमारे पुरखों की जमीन है। यहां से लगाव सा हो गया है।

स्त्री-१ : अब तो तुम्हारा ही सहारा है। किसी तरह से यह दिन निकल जायें।

पुलिसवाला : (चमकती आंखों से) आप चिन्ता न करें। मेरी ड्यूटी यहीं लगी है और फिर सभी पुलिसवाले अपने ही हैं। हमारे होते यहां परिन्दा भी पर नहीं मार सकता। आप चिन्ता न करें। मैं यहां लगातार आता

पुलिस–४ : उनका तो पेट भर गया मास्टर जी। अब दंगा दूसरे स्तर पर पहुंच गया है।

रामशरण यानि।

पुलिस–१ : देखिये, पहले स्तर पर दगा धार्मिक था जिसमें दो धर्म वाले उस चीज के लिए लड़ रहे थे जिसका आम आदमी से कोई लेना-देना नहीं। अब दगा दूसरी स्थिति अर्थात् आर्थिक स्थिति पर पहुंच गया है, जो आम की जिन्दगी से जुड़ा है। इसमें अमीरों के गुंडे हाथ में राइफल, चाकू, आग उठाये गरीब को नेस्तनाबूद करने पर तुले हैं। दुकानें लूटी जा रही हैं, कच्चे मकान जलाये जा रहे हैं। दंगो के बहाने गरीबों का अस्तित्व मिटा कर गरीबी दूर की जा रही है।

पुलिस–२ : (शराब की झोंक मे) साले ये लोग पुलिसवालो से भी नही डरते। सच कहूं तो पुलिसवाले भी इनसे डरते है। इनको जानते हुये भी नहीं पकड़ते। हमारे ऊपर एक साथ हमला कर देते हैं। लेकिन आप चिन्ता मत करो। हम सब ठीक कर देंगे।

पुलिस–३ आज हम थोड़ा आराम करना चाहते है। हो सके तो हमारे लिये सोने का इंतजाम कर दें।

रामशरण (भयग्रस्त) ठीक है लेकिन··· ···

पुलिस–४ क्या हम पर विश्वास नही ? पिछले कई दिनो से तुम्हारी रक्षा कर रहे हैं।

रामशरण नही—नही ऐसी बात नही ·······

पुलिस–१ यदि नही तो इन्तजाम करें।

[प्रकाश लुप्त होकर पुन आलोकित होता है। रहीम का घर।]

रहीम : सुना तुमने। अभी समाचार आया है कि कल कर्फ्यू मे तीन घण्टे की ढील दी जायेगी।

स्त्री–२ कर्फ्यू खुलते ही सबसे पहले स्कूल से तनख्वाह लाना और जितना हो सके राशन लेते आना।

रहीम : हां सोच तो मैं भी यही रहा हू। रामशरण को भी साथ ले लूंगा। एक से दो भले।

स्त्री–२ : पहले उन्ही के घर हो आओ। पता नही क्या हालत होगी।

रहीम : मुझे भी डर सा लग रहा है। पिछली रात मैंने उसके घर में चार पुलिसवालो को जाते देखा था। इससे पहले भी कई पुलिसवाले वहां बदल-बदल कर जाते रहे हैं। खुदा करे सब ठीक हो।

स्त्री-२ पता नहीं क्यूं । सन्नाटा सा लगता है उनके घर में ।

रहीम दंगों का भय ऐसा ही होता है । आदमी हर क्षण आशंकाग्र
रहता है ।

स्त्री-२ : सारी जिन्दगी ही आशंका के घेरे में आ गई है । न आदमी जी सक
है न मर सकता है । पहले ही क्या कम बोझ होते हैं जो एक भ
सन्त्रास और कुण्ठा का बोझ अपने सीनों पर लेना पड़ता है ।

रहीम : यही जीवन है ।

[प्रकाश लुप्त होकर पुन: आलोकित होता है । चिड़ियों की चहचह

रहीम : सुनती हो ।

स्त्री-२ : क्या ?

रहीम : जरा थैला तो दे दो । सामान लाने में आसानी रहेगी । अमन को
तैयार होने को कहो । उसे डाक्टर को भी दिखाना है । हम दो
शरण के घर होते हुये ही जायेंगे ।

स्त्री-२ : मुझे तो डर सा लग रहा है ।

रहीम : क्यों ।

स्त्री-२ : मैं सुबह से ही देख रही हूं सामने के घर में कोई हलचल नजर न
आ रही । तुम अमन के साथ जाकर देखो कहीं कुछ ......

रहीम : नहीं नहीं ...... ऐसा कैसे हो सकता है । उनकी हिफाजत तो पुलि
कर ही रही थी । खैर हम जाते हैं ।

[रहीम अपने बेटे अमन के साथ रामशरण के घर के सामने खड़ा

रहीम : अजीब सन्नाटा है । जैसे घर में कोई न हो (आवाज लगाता है) श
भाई । शरण भाई ।

अमन : चाचा जी दरवाजा खोलो । मैं हूँ अमन ।

रहीम : कोई आवाज नहीं आ रही । बेटा जरा दरवाजे को धकेलो । श
सो ही रहे हों ।

अमन : (दरवाजा धकेलता है । उसके खुलते ही बुरी तरह चीखता है) नहीं

रहीम : (बदहवास सा) क्या हुआ ?

[आगे आता है । आंखें फटी रह जाती हैं । सामने रामशरण, उस
पत्नी और लड़कियों की नंगी लाशें पड़ी हैं । घर का सामान लुटा
चुका है ।]

अमन : (रोने लगता है) ये सब ...... ये सब क्या हो गया ...... किसने कि

सत्य छिपाया नहीं जा सकता

तेलुगु मूल : इंद्रगंटि जानकीबाला
हिन्दी अनुवाद . डॉ. सी. एच. रामुलु

नव मन्मथ के समान २६ वर्ष का प्रवीण के अफसर होकर उस आफिस म म रखते ही सब लोग उसकी तरफ अवाक् हो देखते रह गये। खूबसूरती गंभीरता ई और पद के साथ सुशोभित उस युवा अफसर को देखकर सब लोग आश्चर्य न हुए क्यों ? यही प्रश्न है सबके दिमाग में। क्योंकि ऐसे चतुर अफसर कई । आये और पुर्जों में काम कर चले गये। ये इन सबके अनुभव में है। पर इस ए को देखकर इस कार्यालय में नये-नये जो नौकरियों में आये उनको छोड़कर ने सब आश्चर्य में देखते रह गये।

इस प्रकार आश्चर्यान्वित होने वालों में पहला व्यक्ति खुदीराम है। वह तब मे अवकाश प्राप्त करने वाला है। फिर भी उसका दिमाग चक्कर खा गया।

प्रवीण कोई और नहीं एक साल पहले अकस्मात हृदय की गति रुक जाने निधन हुए अफसर स्वामीनाथन का पुत्र है। स्वामीनाथन के निधन के समय म ण आदिट अफसर की योग्यताओं के साथ नौकरी के लिए तैयार था। उसके मे डूबे का तिनका निकाल के दिया जैसा हुआ। आंगन में नौकरी, आ धमकी।

नौकरी में प्रवेश करने के बाद एक सप्ताह के भीतर उसके पीठ पीछे शुरु होने लगी। व्यंग्य मुस्कान रहस्यमय टीका टिप्पणी आदि उसके कानों तक ने में देर न लगी।

सभी बातों में सबसे ज्यादा विकल हुआ था खुदीराम। काना फूसी पीछे गुजर हा, खुदीराम कुछ समझ नहीं पाया।

जो सोचा था वही हो गया। उस दिन अफसर प्रवीण ने खुदीराम को या। यह सब माजरा क्या है ? पूछा। खुदीराम सर झुकाये मौन खड़ा रहा।

प्रवीण के सारे प्रश्नों के उत्तर देना सरल नहीं है। वह एक लम्बी कहानी हो जायेगी। कभी-कभी कहानी जीवन जैसी नहीं होती। परन्तु जीवन कहानी जैसे हो सकता है।

सुदीराम का मौन प्रवीण से सहा नहीं गया। कौन है वह छोकरा? मुझे और उसे बार-बार देखते हैं और सब आश्चर्य करते हैं क्यों?

सुदीराम सोचने लगा क्या बताऊँ और कैसे आईने में अपना प्रतिबिंब देखकर हैरान होने वाला यह युवक यह कहानी सुनकर कैसी प्रतिक्रिया करेगा। रवि पर अवश्य निकालेगा? उसको नौकरी से हटा देगा या किसी और प्रकार से उसे हानि पहुँचायेगा तो अन्याय होगा। सुदीराम वयोवृद्ध है। भला आदमी है। सागर जैसे जीवन को तैर चुका है। इसलिये प्रवीण ने सुदीराम की आँखों में नजर गड़ाकर सीधा प्रश्न किया। धीरे से, सुदीरामजी! मैं आपसे उम्र में बहुत छोटा हूँ। कारणों से मैं इस कार्यालय में आप से बड़े पोजिशन में आ गया। आप मेरे समान हैं। इधर-उधर की बातें सुनकर मैं परेशान हूँ। आप बेफिक्र सच बताइये।

वह...... आपको बताने का नहीं है। वैसे कुछ है भी तो नहीं।

कोई बात नहीं, आप मुझे तुम कह सकते हैं। मुझे सच-सच बताइये .... सत्य भी क्यों न हो सुनने के लिए मैं तैयार हूँ। कृपा कर मुझे भ्रम में म रखिये।

सुदीराम भयकंपित हुआ। प्रवीण की निष्ठा तथा तीक्ष्णता और नाक सीधी चलने का उसका स्वभाव ने विचलित किया। छिपाने पर भी न छिपने वाले सत्य होते हैं। इन्सानों को धोखा दे सकते हैं। प्रकृति को कोई धोखा नहीं दे सकता।

× × ×

मल्लय्या ने सोना को लेकर कमरे में प्रवेश किया और सुदीराम को प्रण किया। कागजों में व्यस्त सुदीराम ने सर उठाकर मल्लय्या की ओर देखा और अप काम में लग गया। मल्लय्या के समीप खड़ी सोना को ज्यों ही देखा, बस बिजल चकाचौंध कर गयी हो। मल्लय्या खड़े हो क्यों पूछा और नोट लिखकर फाइल के बाजू में रख दिया। धीरे से मल्लय्या ने सोना को आगे कर दिया और कहा— बाबूजी! यह मेरी बहन की लड़की है। माँ-बाप दोनों गुजर गये हैं। अपने दफ्तर में गर्मी के दिनों में पानी ला देने का काम दिलाइये। बड़ी उम्मीद लेकर आया हूँ।

सोना को फिर से एक बार सुदीराम ने देखा। अवाक् हो गया। काम-काज कर जीने वाली वह लड़की न लगी। परदों के पीछे रहने वाली महारानी जैसी है। संगमरमर के पुतले के समान है। वह नाक लम्बी, विशाल नयन, सरकारी दफ्तर में

कैपुपल बाटरमैन की हूनी के लिए वह समुचित नही लगती। कोई राजकपूर इसे देखने तो कहानी इसके लिए लिखा देता और नई फिल्म बनाता, इसे हीरोइन बना देता। सुदीराम सोचने लगा। सुदीराम के मौन को मल्लय्या ने स्वीकृति समझा। तुरन्त कहा—

"बड़े बाबूजी से मैं कहूँगा आप मेरी विनती जरूर मानेंगे। बस आपके कान में भी डालना चाहता था।"

"ठीक है। अपने को एक कामवाली चाहिए। बेचारी जरूरतमंद है।" सुदीराम ने स्वीकृति दी।

उसके बाद सोना को देखकर मल्लय्या स्वामीनाथन के कमरे में गया।

× × ×

एक सप्ताह के बाद मल्लय्या की बातें सुनकर सुदीराम स्तम्भित हो गया। मल्लय्या का मुखम्लान था। वह कुछ कह नही पाया। मन ही मन तड़प रहा था। बड़े बाबू को ऐसी दुर्बुद्धि होगी मैंने कभी सोचा नही था। "समझाकर पूछना चाहिए था।"

"क्या कहूँ बड़े साहब हैं।"

"यह लड़की आपकी रिश्तेदार है या भतीजी।'

अरे बाबू उसने सबसे पहले इन सबके बारे में जान लिया है।

सच तो यह है कि सोना मेरी रिश्तेदार नही है। मेरी भतीजी भी नही। अनाथ बालिका आपने जान लिया है।

तब भी इसका कोई सहारा नही तो अन्याय करना? कहना चाहा, पर मन ही मन खीज कर रह गया।

वास्तव में स्वामीनाथन का कोई दोष नही है। सब कुछ उस कन्या के सौंदर्य का है और उस सौंदर्य की रक्षा नही कर पानेवाली गरीबी का है। सुदीराम ने मन ही मन कहा।

स्वामीनाथन अच्छा आदमी है। पद और प्रतिष्ठा के साथ धनी भी है। साधारण स्त्रियों से बहुत अच्छा व्यवहार करता है। परन्तु उसकी परायी स्त्रियों के प्रति कमजोरी थोड़ी सी ज्यादा है। परायी स्त्रियों के प्रति आकृष्ट होने वालों के लिए उनकी पत्नी सुन्दरी है या नही, प्रश्न नही उठता। उनकी पत्नी परम सुन्दरी क्यों न हो उनकी बुद्धि वैसी की होती है। इस पर स्वामीनाथन की पत्नी उतनी सुन्दरी भी नही। चौड़ा मुखड़ा, इमली के पत्तों जैसी आँखें। मोटे होंठ आदि-आदि सुन्दरता से बहुत दूर।

परन्तु लाखों की रकम लानेवाली स्वजाति की बदरिया को ठुकरा कर सौंदर्य की खोज में सुन्दर लड़की से शादी करने की कामना स्वामीनाथन को नहीं है।

पत्नी को पत्नी के रूप में रखते हुए भी घर के बाहर के व्यवहार को चुपचाप चलाने की सामर्थ्य उसमें है।

ऐसे स्वामीनाथन का सोना के प्रति आकृष्ट होने में आश्चर्य नहीं है। परन्तु मल्लय्या ने इसके बारे में किंचित भी सोचा नहीं था। इसलिए वह हैरान हो गया। ऐसा व्यवहार करना मल्लय्या पसंद नहीं करता। अनाथ बालिका को उपकार करने के विचार से वह दफ्तर लाया था। स्वामीनाथन की नजर पड़ने के बाद बचना दुष्कर है। और अपना स्वामी भी है। जो भी पक्की नौकरी मिल जायेगी तो निश्चित होकर जीवन बितायेगी। यह सोचकर भी नरम पड़ गया था। फलस्वरूप सोना स्वामीनाथन के अधीन हो गयी। भोली-भाली पहले अवाक् हो गयी और रोने लगी। परंतु स्वामीनाथन ने दिलासा दिया कई प्रकार के प्रलोभन देकर अपने वश कर लिया। सोना के सौंदर्य का पूर्णरूप से वह दास हो गया।

खुदीराम और मल्लय्या दोनों सावधान होकर स्वामीनाथन के व्यवहार देखते रहे।

फिर भी अपेक्षा से पहले खबर उड़ी। आग लग गयी, घर में पहले, बस्ती में बाद में। स्वामीनाथन के ससुर तक पहुंच गयी। बस एक महीने के भीतर १०० कि मी दूर स्वामीनाथन की बदली हुई। अत्यंत शीघ्रता से रवाना होने वाले स्वामीनाथन से खुदीराम ने पूछ लिया। उस लड़की का आपने सर्वनाश कर दिया। कम से कम उसकी नौकरी भी नहीं करवायी। नौकरी दिलाने का भरोसा दिया था। मल्लय्या बेचारा लोगों में सर उठाकर नहीं चल पा रहा है।

स्वामीनाथन ने बड़े ही दीन भाव से कहा–तुम ने भी ऐसा सोचा तो मैं क्या करूँ ? मैं सोना को नहीं छोड़ना चाहता था। नौकरी देना चाहता। पर परिस्थितियाँ काबू से बाहर हो गयी।

ऐसी परिस्थितियाँ विषम होती हैं पहले ही जानना चाहिए। अब क्या फायदा अब क्या होता ? जब चिड़िया चुग गयी खेत। खुदीराम ने फटकारा। स्वामीनाथन सर झुकाये खड़ा रहा। थोड़ी देर के बाद खुदीराम के दोनों हाथ पकड़ कर कहने लगा। खुदीरामजी ये हाथ नहीं पैर हैं। मेरे चले जाने के बाद नये अफसर से कहकर सोना को नौकरी दिला देना। मैं तुझे भूल नहीं सकता। तेरा कर्ज मुझ पर रहेगा। दूसरे दिन आंखों में आँसू लिये मल्लय्या उपस्थित हुआ। कहने लगा कि सोना के पाँव भारी है।

खुदीराम का दिल दहल उठा। अनाथों के प्रति दुनिया की रीति यही है। उसका कोई सहारा नहीं जानकर अन्याय करने को पीछे नहीं हटते। ऐसे इन्सानों का

क्या करना चाहिए ?

स्वामीनाथन की करनी में परोक्ष रूप में स्वयं भागीदार है, सुदीराम पश्चाताप करने लगा।

सुदीराम ने नये आये अफसर से सब कुछ बताकर सोना को नौकरी दिलायी। तब तक सोना के प्रसूत हुए चार महीने हुए। लड़का बड़ा सुन्दर था।

× × ×

समय बीतता गया। सोना के पीछे चलनेवाला वह लड़का हू-ब-हू स्वामीनाथन पर उतरा। इसे देखकर सब आश्चर्यचकित हुए। रहस्य कहीं नहीं छिपता है। छिपाने के प्रयास जितने भी करते रहे। इसके प्रमाण में स्वामीनाथन का प्रतिरूप वह बढ़ता गया। सोना ने उसका नाम "रवि" रखा और धीरे-धीरे बढ़कर वह सुन्दर रूप राजा बेटा दसवीं कक्षा में उत्तीर्ण हुआ।

अनेक मुसीबतें उठाकर सोना उसे आगे पढ़ाना चाहती थी। परन्तु विधि ने उस पर व्यंग्य किया था। बीमारी की शिकार होकर पलंग पर पड़ी रही। छः महीनों में वह चल बसी। सोना के मरने के बाद पता चला कि वह कैंसर की मरीज थी।

बुढ़ापे के कारण कहीं और जाने की हिम्मत न कर पदोन्नति को भी छोड़कर सुदीराम उसी दफ्तर में रह गया। इस कारण वह सबका प्रत्यक्ष साक्षी हो गया। रवि की मां गुजर गयी, डिसीजड कोटा में रवि को नौकरी मिल गयी। आफीसर बनकर आये हुए प्रवीण और रवि में रूप का साम्य देखकर सब चकित हुए।

× × ×

सुदीराम से विषय जानकर प्रवीण स्तम्भित हुआ। उसका मुख म्लान हुआ। किंचित् समय तक कुछ बात नहीं कर सका। उस स्थिति में उसे देखकर सुदीराम का मन कल्लोलित हुआ। परन्तु वह कुछ करने की स्थिति में नहीं था। सत्य को छिपाने का प्रयास तो किया पर छिपा नहीं पाया। परन्तु प्रवीण जैसे युवक का अपनी कही सारी बातें सुनना, समझना दुष्कर माना। परन्तु धीरे धीरे वह अपने आपको समाधान कर लेगा और शांत हो जाएगा। सुदीराम वहां से चल दिया।

× × ×

प्रवीण की बातें सुनकर उस दिन सुदीराम चकित हुआ। उसके मुख से बातें सुनकर सुदीराम अवाक् रह गया। उसको देखकर प्रवीण स्वयं समीप आ गया और कहने लगा—सच है सुदीराम जी! यह सच है मैं अपने पिता का वारिस हूं। उनके नाम, धन, सम्पत्ति, परिवार की प्रतिष्ठा और उनकी जिम्मेदारियों का भी वारिस हूं।

उनकी नौकरी भी मुझे विरासत में ही मिली। उनकी कमजोरी की एक जिम्मेदारी को मैं स्वीकार नहीं करता कैसे? वह अन्याय हो जाएगा। मैं अपने कर्त्तव्य के निर्वाह में दोषी हो जाऊँगा।

खुदीराम ने गला ठीक कर कुछ कहा—"तुम बड़े मन में बड़ रहे हो, बाबू! परन्तु आपकी माताजी क्या समझेंगी।" कुछ सोचा भी है बुरा नहीं मानेंगी। मुझे विश्वास है मेरे निर्णय पर वह प्रसन्न होंगी। आप रवि को रैमिंग्टन कॉलेज में भर्ती कराने का तुरंत प्रयास कीजिए। उसको पढ़ा लिखाकर ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित करने की जिम्मेदारी मेरी है। मेरे रहते हुए मेरा भाई अनाथ नहीं हो सकता। पिताजी से सम्पत्ति के साथ मुझे मिली यह विरासत है। सतोषपूर्वक इसे स्वीकार करूँगा। दृढ़ निश्चय के साथ उसने कहा—

"आकाश पाताल का अन्तर है इन दोनों बाप बेटों में" खुदीराम ने स्वयं देखा अन्याय पर आदर्श की विजय पाते। प्रसन्नचित्त हो खुदीराम आगे बढ़ा।

□

स्पर्श

भगवद्दत्त मेहता

मनुष्य का जीवन कितनी अबूझ पहेलियों से भरा रहता है, कोई नहीं जानता। जो आज महादुःखी हैं वे न जाने कब कैसे अचानक सुखी हो जाते हैं। ठीक इसके विपरीत जो आज सुख में हैं न जाने कब घोर संकटों से घिर जाय। परन्तु कुछ भी हो मास्टर राधाकृष्ण शर्मा अपने को महान सुखी मानते हैं। एक आज्ञाकारी बेटा। सेवाभावी बहू और प्यारा सा खिलौना एक पोता। संतोषी मनुष्य को और क्या चाहिये। चालीस वर्ष के अध्यापन जीवन में पंडित राधाकृष्ण अपने विद्यार्थियों, मित्रों व परिवार वालों को यही कहते आये हैं कि, भई मनुष्य के पास संतोष है तो सबकुछ है। और संतोष नहीं है तो चाहे उन्हें राजा ही बना दो फिर भी उनके अभाव कभी पूरे नहीं होंगे। पंडित जी सेवामुक्ति के बाद आराम से अपनी जिन्दगी बसर कर रहे थे। सुबह जल्दी उठना। स्नान कर घूमने जाना। लौटते हुये भगवान के दर्शन कर घर आना। दोपहर में भोजन के पश्चात कुछ देर शयन। चार बजे उठने के बाद चाय पीते हुये अखबार पढ़ना। कुछ देर मुन्ने को खिलाना। खूब प्यार करना। तब तक शाम होते ही मोहल्ले के कुछ गरीब बच्चे आ जाते हैं, सो उन्हें निःशुल्क पढ़ाना। उनका बेटा भी तो कई बार मना कर चुका है कि "पिताजी अब ये पढ़ाना बंद भी कीजिये। पढ़ाते-पढ़ाते जवानी को बुढ़ापे में बदल दिया अब ये छोड़िये भी।" परन्तु वे सदा यही कहते हैं—कि बेटा विद्या दान से बढ़कर कोई दान नहीं होता। और फिर बेचारे ये तो गरीब, अबोध बालक हैं कुछ ढंग से पढ़ लेंगे तो जिन्दगी बन जायेगी। वर्ना बेचारे सारी जिन्दगी मेहनत मजूरी करते-करते आदमी से जानवर बन जायेंगे। बोझा ढोते ढोते ही कमर को दोहरी कर देंगे और एक दिन आंख बन्द कर लेंगे। पढ़ लेंगे तो जीवन में जीने का थोड़ा ढंग सीख लेंगे। जानवर से मनुष्य बन जायेंगे। और मनुष्यता की रक्षा करना सीख जायेंगे।

पंडितजी शाम को उठते ही आवाज लगाते हैं— "बहू चाय व अखबार तो

गा। और हां मुन्ना कहां है ? आज तो उसे देखा ही नहीं है।"

ए सीज़िन पास का समझदार। मुन्ना तो बाहर खेलने गया है।"

'उसे आते ही मेरे पास भेज देना। ज्यादा बाहर मत घूमने दे उसे।"

"पिताजी आपके अधिक लाड़-प्यार ने ही उसे बिगाड़ा है। आप समझाइए।"

"वह लाड़प्यार तो हमने रवि पर शुरू किया था। क्या वह भी बिगड़ा है ? बोल ? कहे तो उसे भी सुधार दूं।"

"पिताजी आप भी कमाल करते हैं।" बहू हंसती हुई भाग गई। कुछ क्षण पश्चात पानी का लोटा और चाय का स्टेनलेस स्टील का गिलास रख गई। पंडित जी को सदा से इसी गिलास में चाय पीने की आदत है। इसमें चाय देर से ही ठंडी होती है और उसके स्वाद का कुछ अलग ही मजा रहता है। और सबसे बड़ी बात शुद्ध तो है ही।

एक दिन बहू एकदम गरमा गरम चाय का गिलास ले आई। उसके हाथ जलने लगे थे। कपड़े से पकड़ना पड़ा था उसे। ससुर जी अखबार पढ़ने में मग्न थे बहू ने जैसे ही गरम गरम गिलास रखा, वैसे ही उन्होंने उठा लिया। खबर पढ़ते र और चाय पीते जा रहे थे। बहू हैरान थी। उनके हाथ और होंठ बिलकुल भी न जल रहे थे। कुछ देर देखने के बाद उससे नहीं रहा गया। पूछ ही बैठी—

"पिताजी, आपको गिलास गर्म नहीं लग रहा है ?"

"गर्म कहां है बहू। मैं कई बार तुम्हें शिकायत कर चुका हूं कि तुम मुझे ठं चाय दे जाती हो।"

बहू ने गिलास छुआ। वह अब भी गर्म था। उसके हाथ अब भी जलने लं थे। बहू का माथा ठनका। कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ अवश्य है। रात को सोते सम पति से कहा—"मुझे लगता है कि पिताजी को कोई भयानक बीमारी हो गई है। चा चाय का गरमा गरम गिलास भी इस तरह पकड़े थे जैसे कोई पानी का गिला पकड़े हों।"

रवि ने कहा—"तुम्हारा वहम भी हो सकता है। जो लोग हमेशा स्टील के गिलास में चाय पीते हों उनकी ऐसी आदत पड़ जाना स्वाभाविक है। बेकार में चिन्त करने की कोई जरूरत नहीं।" और रवि निश्चित हो सो गया। मगर बहू की आंखों में नींद कहां। वह और सावधान रहने लगी।

सर्दियों के दिनों में पंडितजी को अंगीठी में हाथ सेंकना बहुत पसंद है। सर्दियां आते ही उनका क्रम शुरू हो जाता है। अंगीठी में बुझते बुझते जब अंतिम अंगारा भी अपनी सांस तोड़ राख में बदल जाता है तब वे उठते हैं। कई बार अंगारों की राख झाड़ने के लिये उन्हें अपने हाथों से पलट देते हैं।

एक दिन इसी तरह अंगारे पलटते हुये उनके हाथ जल गये। हाथों में फफोले पड़ गये मगर उन्हें दर्द का जरा भी अहसास नहीं हुआ। बहू की नजर हाथों पर पड़ी। मलौन बनाया। परन्तु अब अन्दर ही अन्दर उसकी शंका विश्वास में बदल गई थी। उसने रवि से साफ साफ कह दिया कि पिताजी को खतरनाक बीमारी 'कोढ़' हो गई है। उन्हें तत्काल दिखाकर इलाज शुरू करवाइये. स्थानीय डाक्टर से इलाज शुरू हो गया। मगर साथ ही साथ घर में बहू द्वारा अछूतों सा व्यवहार होने लग गया। उनके जूठे बर्तन व कपड़ों से बहू दूर-दूर रहने लगी। पंडितजी इन सब बातों का अर्थ समझ रहे थे। मगर करते भी क्या लाचारी थी। और बहू की शिकायतें बेटे से करके उसके सुख-चैन को लूटना उनकी आदत में नहीं था। वे तो बस एक असहाय बने सबकुछ सहने को तैयार थे। मगर सबसे बड़ा दुःख उनका यही था कि वे मुन्ने के लाडप्यार से दूर होते जा रहे थे। बहू की चौकन्नी निगाहें उसे उनके पास भी नहीं फटकने देती थी। अनजाने में कभी मुन्ना दादाजी के पास जाने भी लगता तो बहू चील की तरह झपट्टा मार कर उसे पकड़ ले जाती। उस समय उन्हें ऐसे लगता जैसे उनके कलेजे में किसी ने अन्दर तक नश्तर चुभा दिया हो। उन्हें बीमारी के दर्द से भी यह दर्द ज्यादा असहनीय लगता। लेकिन उस रात तो गजब हो ही गया। मुन्ना एक दिन मां की नजरों को बचाकर दादाजी के पास पहुंच ही गया। वे भी उसके लिये बेचैन थे। अपने को रोक नहीं पाये। और लगे उसे खूब प्यार करने। अपने हाथों के स्पर्श से उसे प्यार करते जा रहे थे। चूम रहे थे। चिपटा रहे थे। उनकी आंखों से अश्रुधारा बहती जा रही थी। उस समय उन्हें लग रहा था कि जैसे भगवान ने अमूल्य कोष लौटा दिया है। जैसे कोई डाकू अचानक आकर सब कुछ लूटकर, जख्मी बनाकर फरार हो जाते हैं ठीक उसी तरह अचानक कहीं से बहू प्रगट हुई। झपट कर मुन्ने को छीना और साथ ही चेतावनी भी देती गई कि अब अगर मुन्ने को स्पर्श भी किया तो... -। वो और अधिक नहीं सुन पाये। कानों में उँगलियां डालकर बैठ गये।

रात्रि को कमरे में पति-पत्नी का वाक्युद्ध जोरों पर था। बहू ने साफ-साफ रवि को कह दिया कि अब इस घर में ससुरजी रहेंगे तो वह मुन्ने को लेकर अपने पीहर चली जायेंगी। अब वह एक दिन भी दादाजी की काली छाया पोते पर नहीं पड़ने देगी। रवि खामोश था। किसे घर में रहने दे और किसे नहीं। उसकी समझ से परे था। उसी रात पंडितजी ने घर छोड़ दिया। बेटे-बहू को बिना बताये ही निकल गये। अपने खातिर बेटे की गृहस्थी में आग लगाना किसी भी पिता को स्वीकार नहीं होता। पंडितजी तीर्थयात्रा पर निकल गये। अब उनके जीवन में बचा ही क्या था। कोई आकर्षण नहीं रहा। देव दर्शन करना और भटकते मन को शान्त करने की चेष्टा करना, बस यही काम रह गया उनका।

अचानक एक दिन रवि के मित्र और पंडितजी के शिष्य प्रकाश की नजर ऋषिकेश में गंगा तट पर पंडितजी पर पड़ी। वह चौंका, गुरुजी यहां ? रवि और बहू

रहा है ? नहीं चाहते हुये भी प्रकाश के जिद पकड़ने पर उन्हें उसके साथ जाना पड़ा। प्रकाश एक फर्म में उच्च अधिकारी था। अच्छे डाक्टरों से चिकित्सा शुरू हो गई। डाक्टरों का कहना था कि यह लोगों का बेकार का भ्रम है कि वे बीमारी छूत की होती है या माइमाज बीमारी है। न तो इनके सम्पर्क में आने पर किसी को बीमारी लगती न ही यह असाध्य है। निरन्तर चिकित्सा से बीमारी ठीक हो जाती है।

प्रकाश की बहू ने जी-जान से उनकी सेवा की। प्रकाश हमेशा अपनी पत्नी को यही बताया करता था कि आज वह जो कुछ भी है उसे बनाने में गुरुजी का बहुत बड़ा हाथ है। प्रकाश का मुन्ना भी उनसे खूब हिल गया था। पंडितजी को फिर वैसी ही गृहस्थी मिल गई थी। केवल अन्तर था तो इतना कि स्थान और पात्र बदल गये थे। खून का रिश्ता नहीं था। मगर उससे भी बढ़कर था।

पंडितजी निरन्तर अच्छी चिकित्सा और सेवा से अच्छे होने लगे। प्रकाश और उसकी पत्नी प्रसन्न थे। शामें हमेशा प्रकाश गुरुजी के साथ ही व्यतीत करता। शास्त्र, मनुष्यता और जीवन दर्शन पर खूब चर्चायें होतीं। गुरुजी सदा एक ही बात पर बल देते कि आज मनुष्य की सबसे बड़ी मानसिक दरिद्रता ही यही है कि मनुष्य कृपण हो गया है। मनुष्य के पास ईश्वर ने यह प्रेम का अमूल्य खजाना दिया है जिसे बांट कर मनुष्य मनुष्य को बेदाम खरीद सकता है। लेकिन हम उसमें ही सबसे ज्यादा कंजूसी करते हैं। एक बार प्रेम बांट कर तो देखो भाई! स्वयं ही उसके स्वाद को पा जाओगे। मगर कोई भी एक बार भी बांटना नहीं चाहता। बस पाना ही चाहते हैं। केवल पाना ही। घोर स्वार्थी हो गया है मनुष्य। जब प्रभु की दी हुई बेदाम प्रेम की भावना को भी मुफ्त नहीं बांट सकते हो तो दामी वस्तु को कब बांट सकोगे भाई!

प्रकाश ने अपने जीवन में गुरुजी के इसी मूलमंत्र को आत्मसात किया है। उसी से वह अदने से क्लर्क से बढ़ते-बढ़ते इस विशाल फैक्ट्री के मैनेजर तक के पद पर पहुंचा है। मजदूरों के दिलों पर वह राज करता है। यही कारण है कि उसकी फैक्ट्री में आज दिन तक एक भी बार हड़ताल नहीं हुई।

पंडितजी ठीक हो गये हैं। अब वे आये दिन प्रकाश से जाने की छुट्टी मांगने लगे हैं। प्रकाश किसी न किसी बहाने टालता ही जाता है। एक दिन पंडितजी ने साफ-साफ कह ही दिया कि—"प्रकाश अब मेरी आत्मा तुम पर और अधिक बोझ बने रहने की इजाजत नहीं देती। मैं किसी भी दिन बिना बताये ही निकल जाऊंगा।" प्रकाश ने भी अन्तिम वायदा किया कि मेरी बहिन की शादी के बाद आपको हर्गिज नहीं रोकूंगा। आपके हाथों का स्पर्श उनके जीवन को सुखी बना दे यही कामना है।

विवाह की तैय्यारियां होने लगी। प्रकाश के कोई विशेष सम्बन्धी नहीं थे। वह अनाथ था। गुरुजी के पास ही उसका जीवन शुरू हुआ था। आज घर में विशेष ...री धम रही थी। गुरुजी ने अनायास ही पूछ लिया—"प्रकाश क्या कोई विशेष मान आ रहे हैं?"

आते ही उनकी दृष्टि ब्रीफकेस पर पड़ी। ब्रीफकेस अभी भी सीट पर उनके पास पड़ा था। गाड़ी चले डेढ़ घंटा हो गया था लेकिन अपने सामान को व्यवस्थित ही न रख पाए थे।

उन्होंने ब्रीफकेस को उठाकर ढंग से यथोचित स्थान पर रखा, बिस्तरबन्द भी एक किनारे रखा। दिल्ली आने से दो दिन पहले ही पत्नी और वे बाजार जाकर अटैचीकेस और बिस्तरबन्द खरीद कर लाए थे। पूरे सात सौ रु. खर्च हो गए। उन्हें पत्नी पर खीझ होने लगी जिसने उन्हें इस तरह सात सौ रु. पानी में डालने को बाध्य किया।

क्या फर्क पड़ता? यदि पड़ोस से अटेची और बिस्तरबन्द माग कर ले आते। क्या यहां दिल्ली में संयोजक जी मुझे वापस कर देते कि आपका सामान असबाब अच्छा नहीं है अतः आपका सम्मान नहीं होगा। गिरधारी बाबू को लग रहा था कि उन्होंने जब-जब अपनी पत्नी माया की बात मानी है उन्हें नुकसान ही उठाना पड़ा है।

चेहरे पर व्यंग्यात्मक मुस्कान उभर आई। गर्दन को झटका देते हुए वह क्रोध में ही बोल उठे—"सब बड़े आदमियों के चोचले हैं।"

"जी, आपने मुझसे कुछ कहा?"

सामने बैठे यात्री ने गिरधारी बाबू की ओर ध्यान केन्द्रित किया।

ओह, नहीं। गिरधारी बाबू सकोच से गड़ गए।

सामने बैठा युवक मुस्कराते हुए बोला—"मैंने समझा मेरे सिगरेट पीने से आपको कुछ ऐतराज हो रहा है। मैं तो आज सुबह की फ्लाइट से ही उदयपुर निकल जाता पर क्या करूं? मौसम की खराबी से आज की फ्लाइट कैंसिल हो गई, वी आई पी. कोटे से फिर मुझे रिजर्वेशन मिला। ये गाड़ियां तो बहुत बोर करती हैं। "आप कहां तक जाएंगे?"

जी आपके साथ ही उदयपुर तक। आप वहां कौन से कॉलेज में पढ़ते हैं? गिरधारी बाबू ने बातचीत जारी रखते हुए कहा।

सहयात्री ने एक क्षण को चेहरे पर नापसन्दगी के भाव जताए, फिर हाथ हिलाते हुए बोला—"सर पढ़ाई तो अपने हिस्से में ही नहीं आई। दरअसल मैं एथलीट हूं। चार साल तक इण्टरमीडिएट में ही घीसता रहा, हार कर पढ़ाई छोड़ दी, असली दौड़ के मैदान में जी जान से जुट गया। पढ़ाई करके भी क्या मिल जाता, देखा जाए तो मैं पढ़े लिखों से भी अच्छा हूं। एक जानीमानी कम्पनी ने बड़ी खुशामद करके मुझे अपने यहां रख लिया है।" चेहरे पर गर्व की रेखाएं उभर आईं।

'तुम.........तुम अमित चक्रवर्ती हो ना।" गिरधारी बाबू ने हर्षमिश्रित आश्चर्य से कहा।

छूटी तो वे नहीं मरते थे। क्योंकि कल ही दूरदर्शन में उनके सम्मान का समाचार प्रसारित हुआ था। टी. वी. कवरेज में पुरस्कार लेते हुए वे दिखाई पड़ रहे थे।

रेल की खिड़की से वृक्ष, गाव-शहर खिसकते जा रहे दिखाई दे रहे थे। गिरधारी बाबू के मन में अपनी स्मृतियां उभर रही थीं। लेकिन देख वे अमित की ओर ही रहे थे। अमित सोच रहा था कि गिरधारी बाबू बड़े दत्तचित्त होकर उसकी बातें सुन रहे हैं, बातचीत करते हुए समय न जाने कहां बीत गया? जयपुर स्टेशन पीछे छूट गया। गिरधारी बाबू की तो आज एकादशी थी सो केवल दूध पीकर ही रह गए। अमित डिनर ले चुका था। बिस्तर लगाते हुए अमित को ध्यान आया कि इतनी देर से वही बोले जा रहा है। गिरधारी बाबू को भी तो कुछ बोलने का मौका देना चाहिए।

"गिरधारी बाबू! आपका दिल्ली आना कैसे हुआ?" अमित ने 'आपका' शब्द पर ऐसे जोर दिया माना दिल्ली किसी वर्ग विशेष के लिए सुरक्षित है।

"वहां केन्द्रीय संस्था ने मेरा सम्मान समारोह आयोजित किया था।"

"वाह, सर बधाई हो, साहित्यकारों का सम्मान तो होना ही चाहिए। साहब, आप लोग कुछ ऐसा लिखा करें, जो सामान्य व्यक्ति की समझ में आ सके।"

गिरधारी बाबू क्षण भर आवेश में आ गए। मन ही मन बोले—"कल के छोकरे तुमसे पूछ कर अब हम लिखेंगे।" लेकिन प्रत्यक्ष में हंस कर बोले—सामान्य आदमी तो हमारा लिखा समझ ही लेता है, असामान्य के लिए दुनिया में साहित्य के अलावा और भी बहुत कुछ है।

इस बात पर दोनों हंस पड़े। अमित को कुछ अपराध बोध सा हो रहा था। गिरधारी बाबू को प्रसन्न करने के लिए कहने लगा—"सर! उदयपुर पहुंचने पर तो आपका बहुत सम्मान होगा।

पिछले एशियाड में अपने अच्छे प्रदर्शन के बाद जब मैं वापस आया तो कम्पनी ने बिल्कुल नई कार मेरे लिए भेजी थी। खुद जनरल मैनेजर मुझे रिसीव करने आए थे। फूल मालाओं से मेरा चेहरा ढक गया था। आखिर मेरे कारण कम्पनी का नाम भी हुआ। कहकर चादर ओढ़ कर सो गया।

गिरधारी बाबू के मन में न जाने कहां से ईर्ष्या एवं खेद का स्रोत फूट पड़ा था। प्रथम श्रेणी की आराम देह बर्थ पर गिरधारी बाबू सोने की असफल चेष्टा कर रहे थे। सामने की बर्थ पर अमित बड़े निश्चिन्त भाव से सो रहा था।

कैसी विडम्बना है कि समाज में खिलाड़ी को तो इतना सम्मान मिलता है और साहित्यकार को पग-पग पर विषपान ही करना पड़ता है। कब तक साहित्यकार 'नीलकंठ" की भूमिका निभाता रहेगा?

सारी रात गिरधारी बाबू हिसाब लगाते रहे ग्यारह हजार रुपयों का। अन्त

कील

डॉ. शशि जोशी

आज फिर अचानक राकेश की दृष्टि सामने दीवार पर लगी हुई कील पर पड़ गई। वह मन ही मन भुनभुना उठा अपने आप पर ही। 'क्यों बार-बार मेरी दृष्टि इस कील पर जाकर अटक जाती है? रश्मि ने इसे आखिर यहाँ क्यों गाड़ा? इतना इण्टीरियर करवाया था, मैंने इसका सीधा सोचा था कोई सुन्दर सी पेन्टिंग यहाँ लाकर लगा दूंगा, लोग मेरे टेस्ट की तारीफ करेंगे, मेरी सुरुचि का प्रतीक होगी। परन्तु रश्मि ने यह कील ...'

उसने झल्ला कर रश्मि को आवाज दी। आक्रोश से उसके सर की नसें तनी जा रही थीं।

"रश्मि यहाँ आओ।"

"क्यों क्या बात है?"

'कितनी बार तुम मुझसे इस बात का कारण पूछोगी? तुमने मेरा चैन हराम कर दिया है जब भी मैं इधर से निकलता हूँ न चाहते हुये भी मेरी निगाह इस कील पर पड़ जाती है। मैं नहीं जानता था कि तुम इतनी गंवार हो? टेस्ट क्या होता है? इसका तो तुम्हें ए. बी. सी., भी नहीं आता। उफ ....अब खड़ी-खड़ी क्या देख रही हो? मेरे लिये ब्रेकफास्ट बना दो मुझे ऑफिस जाना है। —समझी"

"वही तो बना रही थी, आपने बीच में ही बुला लिया," कहते-कहते उसकी बड़ी-बड़ी सुरमई आँखें बरबस डबडबा आईं, वह शीघ्रता से मुड़ गई क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि राकेश उन आंसुओं को देख कर फिर कोई कमेन्ट पास करे। उसने नाश्ता डाइनिंग टेबिल पर लगा दिया और स्वयं उसका टिफिन तैयार करने चली गई।

राकेश ने जल्दी-जल्दी हाबड़तोड़ में नाश्ता किया और अपना ब्रीफकेस लेकर,

कर रहे हो आजकल ?

"आर्कीटेक्ट हूं"

'बहुत अच्छे"

"अरे भई शरीर देखो तो और क्या है ?"

"आती हूँ, अरी" "कैसा ?" दोनो एक दूसरे के गले लग गई। "इतने दिनों के बाद देखा है तुम्हें ? और तुम्हारे बच्चे कहाँ ....?"

"बच्चे — बस एक ही तो बेटी है मेरी-रश्मि"

"अरे बुलाओ न उसे भी !"

"रश्मि !"

बस उस दिन के बाद राकेश को हर समय रश्मि का ही ध्यान रहता। बड़ी बेसब्री से एक-एक दिन गिन रहा था। "और यह भी कि-उसका क्या रखा जायेगा ?"

"हेमन्त, हिना, अर्पित, ईशानी," नहीं इसमें से एक भी नाम अच्छा नहीं हम सोच कर बहुत अच्छा सा नाम रखेंगे। इस तरह दोनो अपने आंगन में होने किलकारियों के सपनों का आदान-प्रदान करते रहते।

एक दिन राकेश जैसे ही ऑफिस से वापिस आया, उसने देखा घर मे लगा है।

"सब कहा गये ? क्या हुआ ?"

कि तभी पड़ोस की मिसेस माथुर आई उन्होंने बताया "रश्मि दोपह बाथरूम में फिसल गई थी। उसके बाद मे उसके पेट मे इतना दर्द हुआ कि अस्तपाल ले जाना पड़ा। आपको फोन भी किया था, मिसेस शर्मा ने ... साथ ही गई है। आपके लिये मैं पहले चाय बना देती हू फिर आप अस्पताल जाइ

"नही-नही, बस मैं अभी जा रहा हू। प्लीज चाय, रहने दीजिये ...।

रास्ते भर राकेश के मन मे न जाने कितनी आशकायें उठती रही—" कैसी होगी ? उसे कितनी चोट.......... नही ऐसा नही हो सकता ?"

"टैक्सी होली" नर्सिंग होम के सामने रुक गई। राकेश टैक्सी वाले को थमा कर, न जाने कितनी सीढ़ियां पार करता पहुच गया। रिसेप्शन मे उसे लगा—"रश्मि पत को ऑपरेशन थियेटर मे ले जाया गया—वे बेहोश थी। आ इन्तजार किया जा रहा था। मगर देर होने से तो दोनो ....। इसलिये हमने उचित समझा।"

राकेश की सांस घुट रही थी। मन में आशकाओ के गुबार उठ रहे थे...

"हे ईश्वर क्या होगा ?" वह बार-बार ऑपरेशन थियेटर की तरफ देखता और फिर [illegible] घड़ी [illegible]। [illegible] तभी थियेटर का दरवाजा खुला डॉक्टर बाहर निकले। "[illegible] आप शायद मिस्टर [illegible] हैं।"

"जी हाँ कैसी है मेरी पत्नी ? [illegible] ?"

"वे अब ठीक हैं, चार घंटे से बच्चा पेट में ही मर गया [illegible] ऑपरेशन करना पड़ा। बहुत मुश्किल से बचा सके हम मिसेज [illegible] को।"

"[illegible]" [illegible] मिस्टर [illegible]। अभी कुछ देर में उन्हें होश आ [illegible]। लेकिन उन्हें अभी यह सब कुछ न बतायें क्योंकि वे अभी बहुत कमजोर हैं। इस सदमे को शायद सहन न कर पायें।

[illegible] राकेश जाकर रश्मि के सिरहाने बैठ गया। वह बेहोश थी। होश आते ही उसने धीरे से पुकारा—रा के श।

हाँ मैं यहां हूं, कैसी तबीयत है ? रश्मि रो पड़ी 'राकेश मुझे क्या हुआ ?"

कुछ भी तो नहीं, सब ठीक हो जायेगा कह कर राकेश उसके बालों को धीरे-धीरे सहलाने लगा। रश्मि आश्वस्त होकर फिर सो गई।

"राकेश की आंखें डबडबा आईं।" उसने अपने आपको संयत कर लिया।

कुछ दिनों के बाद घर आकर रश्मि धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगी। उसे पता था कि उसका चार माह का "एबॉर्शन" हो गया है। वह बहुत उदास हो गई। इजा-बजू भी आये कुछ दिन रह कर चले गये।

रश्मि भी विगत घटना को भूलने भी लगी। और नये सिरे से भविष्य के सपने संजोने लगी। परन्तु राकेश उसे सच्चाई नहीं बता सका कि अब वह कभी [illegible]। उसका मन बुझ गया था। उसे चारों तरफ एक खालीपन घेरने लगा। उसके हृदय में निराशा की कील बहुत गहरे तक धँस गई थी। अनजाने में ही उसका व्यवहार रश्मि के प्रति कितना कटु होता जा रहा था उसको शायद यह अनुभव नहीं हो रहा था। वह चिड़चिड़ा हो गया था।

रश्मि उसी तरह सोफे पर निढाल सी पड़ी न जाने कब तक रोती रही। आँखों से बहते आंसू सूख कर गालों पर लकीरें बन गये थे। उसने देखा चार बज चुके थे।

"अरे ये क्या हुआ मुझे ?" राकेश के आने का समय हो गया वह जल्दी से बाथरूम में गई नहा-धोकर तैयार हो गई। चाय का पानी चढ़ाने के बाद वह डाइनिंग टेबिल से सुबह के बरतन उठाने लगी कि तभी सामने उसकी निगाह "कील" पर पड़ गई। उसने सोचा आज क्यों न उनके आने से पहले यह "कील" मैं यहां से उखाड़ दूं क्यों कि यही उनके दिमागी तनाव का कारण है। उसने दोनों हाथों से कील को पकड़

कर खींचना चाहा—वह टस-से मस नहीं हुई। वह रसोई में जाकर मदानी ले आई और उससे पकड़ कर कील को जोर-जोर से घुमाने लगी - कि तभी घण्टी बज उठी. उसने दरवाजा खोला वह देखकर अवाक् सी रह गई। राकेश की गोद में दो तीन महीने का बच्चा था।

"ये सब क्या है ? रा के श !"

राकेश ने बच्ची को रश्मि की गोद में लिटा दिया। बच्ची किलकारियां मार रही थी।

"हां रश्मि इस बच्ची को हम गोद ले रहे हैं तैयार हो जाओ हमें अभी अनाथ आश्रम चलना है वहीं वकील भी बैठे हैं।" "मगर ऐसा क्यों—क्या ? · ? मे'' रे। अपने · ।"

हां, बस यही समझ लो तभी तो मैंने आज लगातार घूमती इस कील का इलाज खोज निकाला। ठीक है न ?

रश्मि अवाक् सी रह गई। तुमने मुझे पहले सब कुछ क्यों नहीं बताया कि मैं ·· ? "खीजकर" उसने बच्ची को जमीन पर लिटा दिया। बच्ची टुकुर-टुकुर अब भी उसी की तरफ देख रही थी। कि एकदम रो पड़ी।

रश्मि को उसी क्षण न जाने क्या हुआ ? नहीं मेरी बच्ची, नहीं। कहते हुए उसने अपनी छाती से चिपका लिया और ममता उमड़ पड़ी। दोनों तैयार होकर अनाथ आश्रम गये, सभी औपचारिकताओं के बाद जब घर आये तो राकेश ने तुरन्त अपने ब्रीफकेस से निकाल कर पिकासो की एक पेंटिंग "दी चाइल्ड" उस कील पर टांग दी। कील का अस्तित्व सार्थक हो गया।

सावित्री परमार

'आस्था की नदी'

मौसम के
भटके कदम
अभिशापित हो रहे जनम ।

दिन पड़ा कर्ज के बोझ सा
शाम दर्द सी झुकी मुंडेर पर
झुर्रियां देख द्वार की
सोच छा गया कनेर पर

हवाओं के
तेवर गरम
दृष्टि में फैले वहम ।

विवशता से ठहर सी गईं
आकाश की खुली हथेलियां
उदासी को बहला रहीं
सपनों की मोमिया पहेलियां

भूले अनार्य
बने हम
जीवन का वैदिक धरम ।

अर्थहीन काव्य-पंक्ति सी
व्यक्त भ्रमित पूरी सदी
कौन पी गया धूमकेतु बन
आस्था की स्वर्णिम नदी

अनाहूत से
जमे भरम
मलीन रूप हो गये चरम । □

विनोद सोमाणी 'हंस'

फसलें

तुम्हारी और
हमारी
चाहत एक ही है
रागदरबारी सुनने की
और औरों को
तो सुनाने की।

न जाने क्यों
हम चाह कर भी
निर्बंध नहीं हो पा रहे हैं
इन कटु अहसासों से
जिनके शिकंजे में
सारा माहौल फंस चुका है।

हम सभी
चाहे पद, क्षेत्र व धर्म से
भिन्न हों
आत्मश्लाघा से ग्रस्त हैं
इसीलिए
व्यर्थ ही
व्यस्त हैं।

इन दुरभिसंधियों के रहते
हम तो क्या
विश्व का कोई भी राष्ट्र,
समाज व सम्प्रदाय,
दल व राजनीति
सड़ांध से मुक्त नहीं है।

तब हम उगा पायेंगे
इन प्रदूषित वादियों में
सौरभ की फसलें
ताकि जीवन को
जीवन सा कहा जा सके
प्रायोजित धाराओं को
सहजता से टाला जा सके।

□

रमाकान्त शर्मा

तितली

तितली के ख्वाब
उसके पंखों से ज्यादा
होते हैं रंगीन
लेकिन
तितली का मन
शायद होता है
सबसे संगीन
मैं और तुम
एक तितली की
जिंदगी जीते हैं
कांटों में
बिधने तक
रंगों में तैरते
और
रंगों में डूबते हैं।

□

त्रिलोकचन्द्र शर्मा

गीत

धारी प्रसून सिक्त मृगशिरा
द्युति विहीन फाल्गुनी बयार
धाम से मलीन शीत कौमुदी
माह से मलीन है मल्हार।

अहोरात्र टेसनी बसुन्धरा
पद प्रहार भोंकती बयार
कुंज का किरीट हुआ नागफण
टूट हुआ दिव्य देवदार।

सत्यवीर हरिश्चन्द्र नाटिका
ऋतु नटी व सूर्य सूत्रधार
पथहीन मानवी जिजीविषा
अर्थहीन श्वास का प्रसार।

कुंद कुंद है प्रयाण उन्मुखी
केतकी गुलाब कांचनार
देश में विदेश में सभी जगह
कर रहा अकाल चीत्कार।

दुरभिसंधि शुष्कता विषाद की
है अलंघ्य चीन की दीवार
मातमी धुनें असह्य बज रहीं
रो रहा खगोल जार जार।

विंध्य में अरावली व कच्छ में
भ्रष्ट अंग घोर अपस्मार
आर्तनाद विश्व गीत सा प्रगल्भ
कटु निषाद मंद्र-मध्य-तार।

गारवना हमान गी चमाचमान
रेम घनो गहन गगपार
माज बनी उद्गुनी प्रहेलिका
बिखरी विवश दृष्टि भार।

खोजनो हलक निदाघ घातो
चमन चंद मन्द निधु पार
आर्द्र प्रसुप्त खिन्न मृगतारा
द्युति विहीन फाल्गुनी बयार।

C

रमेशचन्द्र पंत

कहीं से भी……

शुरू हो सकती है
कही से भी कविता
चिड़िया की घात मे
बैठे हुए बाज को देखकर
ओठों पर जमी हुई पपड़ी
पथराई आँखें/बुझे चूल्हे
इनके बीच कहीं से भी
शुरू हो सकती है कविता
नहीं चाहिए
कविता के लिए कोई मुखौटा
कविता
बेनकाब करती है मुखौटों को
नही छिप पाता है कुछ भी
कविता की आँख से
इसीलिए
हमेशा से ही चालाक नस्लें

मानती आई है कविता को
अपना दुश्मन/कट्टर दुश्मन
क्योंकि कविता हमेशा से ही
लड़ती रही आई है
कमज़ोर के पक्ष में
वह बढ़ाती रही है हौसला
देती रही है ऊर्जा
हर उस लड़ाई के लिए
जो पहुँच रही होती है
अपने निर्णायक दौर में
उससे भी आगे/कविता
हमें सिखाती है आदमी होना
और यही होती है
कविता की असली पहचान
शुरू कहीं से भी हो सकती है कविता
फूल, नदी, तितली
आकाश और चिड़िया
कुछ भी हो सकता है
कविता के लिए गम्य
और कहीं से भी शुरुआत
हो सकती है—कविता की।

□

सुरेश शर्मा

सुबह की प्रतीक्षा में

बहुत सहज है
भरे हुए पेट / व
गर्म प्यालों के बीच
भूखमरी पर बहस करना .....
आम आदमी की
तरफदारी करते हुए
उसी के कंधे पर
लदे-लदे
यकायक / खास बन जाना,
फिर
वातानुकूलित कमरों में
नर्म-मखमली गद्दों पर बैठ
आग उगलती सड़कों
पर / घिसटते पैर
व अलाव के सहारे
गुजरती जिंदगी के लिये
जेहाद छेड़ देना
बहुत सहज है !
मगर / मुश्किल होता है.....
बहुत मुश्किल होता है
ठिठुरती बस्तियों में
खाली पेट
अलाव तापते हुए
सुबह की प्रतीक्षा करना ।

□

मदनमोहन परिहार

इतिहास का हाशिया

तुम्हारे
हाँ और ना के बीच
एक मौन
विराम सा खड़ा है।
इस सन्नाटे में
मेरे भाग्य का उत्तर है।
ऐसा न हो कि
मैं प्रश्न दोहराती रहूँ
और तुम
चट्टान बन जाओ,
क्योंकि
जिसने भी इसका
उत्तर दिया
वह यक्ष बन कर जीया है,
या फिर
दुष्यन्त बन कर
भूल गया है,
या फिर
इतिहास के हाशिये का
पात्र बन कर
रह गया है।

■

डी. डी. मोहन 'मधुर'

गीत

फागुनिया द्वार खुले,
मन रिझुवा प्रान मिले।

मनुवा महक उठे बगिया में
बनुरा झूम उठे बगिया में
लाज छूट गई पिछवारे
बतिया बढ़ खुले, मन रिझुवा प्रान मिले।
फागुनिया द्वार खुले मन रिझुवा प्रान मिले।

मनभाये कजरारे नैना, अनुरागनी बतियाते बैना
पल-पल पिय की मुरलिया में, अधरा लिपट खुले
फागुनिया द्वार खुले।

थिरक पड़ो पाँवें मृदंग पर
बिखर पड़ी पायल उमंग पर
नदिया से सरसाये बहने
मन: कपोल-खिले, फागुनिया द्वार खुले।

हियरा में उरझे हठियाते
बतिया में सतरंग सुहाते
उतर गये डूबे रंग रग-रग
अन्तर प्यार घुले फागुनिया द्वार खुले।
फागुनिया द्वार खुले, मन रिझुवा प्रान मिले।

□

फारूक आफरीदी

उलझन

सुलझाते – सुलझाते उलझन,
खुद उलझन बन जाता मैं।
दर्पण की आशा में हर पल,
पत्थर से टकराता मैं।

हो जाते दिल के टुकड़े जब,
बैठ बटोरा जाता मैं।
लोग समझते मुझको पागल,
घायल सा बतियाता मैं।

उलहानो की होती बारिश,
उसको भी सह जाता मैं।
हो जाता रजनी से घायल,
ठोकर खा धुन जाता मैं।

फिर भी सीख कहां पाई है,
समझाने से क्या होगा ?
बनने को औरों का सम्बल,
कांटों से उलझाता मैं।

☐

गजल

सुरेन्द्र चतुर्वेदी

आदमी खतरे में है......

ये नहीं कि मात्र का ही जिंदगी खतरे में है,
दौर है ऐसा कि अब पूरी सदी खतरे में है।

बच गए मगर मुहाने कहीं बचा रह जायेगा,
जबकि सारी शाम की ही रोशनी खतरे में है।

अब तो समझो कौरवों की चाल सारी पाण्डवो,
होश में आओ तुम्हारी द्रोपदी खतरे में है।

अपने बच्चों को दिखाओगे कहाँ अगली सदी,
जी रहे हो जिसमें तुम वो ही सदी खतरे में है।

मंदिरों और मस्जिदों को मन के भीतर लो बना,
वरना खतरे में अजानें, आरती खतरे में है।

ना तो नानक, ना ही ईसा, राम ना रहमान हो,
पूजता है जो इन्हें वो आदमी खतरे में है।

□

गिरिराज मोहन गुप्त

ग़ज़ल

फूल के रंग मे उदासी देखकर लिखना पड़ा,
कंटकों की भीड़ खासी देखकर लिखना पड़ा।

एक असफलता के जगल मे बिलखती चीखती,
कामना हर एक प्यासी देखकर लिखना पड़ा।

बेदमी के खण्डहरों मे भी उजाला था कहीं,
प्यार की आभा जरा सी देखकर लिखना पड़ा।

अभावों की आंधियो मे थरथराती कांपती,
ज़िन्दगी जलती दिया सी देखकर लिखना पड़ा।

मां का गठिया हाई ब्लड प्रेशर पिताजी का गुरु,
वृद्ध दादाजी की खांसी देख कर लिखना पड़ा।

○

पुस्तक-समीक्षा

पृथ्वी के लिए (काव्य-संकलन) / रणजीत/
भावना पब्लिशर्स, [illegible] / प्रथम संस्करण १९९१/
मूल्य-४० रुपये / पृष्ठ संख्या ११०+८

बद्रीप्रसाद पंचोली

इस संकलन में रचनाकार की रणजीत की १९८४ से १९९० तक लिखित कविताओं को संगृहीत किया गया है। प्रारम्भिक तीन रचनाएं १९८२ और १९८३ की भी हैं। संकलन में रचनाकार ने समग्रता का ध्यान रखा है। कुल ६८ रचनाओं में इस कालखण्ड में कवि के मानस में उठी प्रतिक्रियाओं का लेखा जोखा है। जिन घटनाओं ने रचनाकार के मन को 'आलोड़ित-विलोड़ित' किया उन पर उसने सहज और बेबाक प्रतिक्रिया को काव्य की भाषा में निबद्ध किया है।

'प्रतिक्रिया' प्रतिक्रिया ही होती है—क्षणस्थायी और परिवर्तमान भी। उसे ईमानदारी से व्यक्त कर दिया जाय—इतना भर पर्याप्त होता है। इन संकलित कविताओं में रचनाकार ने अपने इस धर्म को निभाया है। कुछ प्रतिक्रियाएं तीखी हैं इसलिए असह्य भी हो सकती हैं, पर लेखक ने इसकी परवाह नहीं की है।

संकलन का नाम 'पृथ्वी के लिए' रखा गया है- इसी शीर्षक की कविता को लेकर। यह कविता उन लोगों, समुदायों, राष्ट्रों और राष्ट्राध्यक्षों के ऊपर कठोर प्रहार है जो अपनी सर्वग्राही और सर्वभक्षी प्रवृत्ति से भूतल के सभी संसाधनों को पूरी तरह से चाट जाना चाहते हैं। पृथ्वी वसुन्धरा है, रत्नगर्भा है, सुखदायी माता है। वेद ने गाया है—माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्याः। जीवन को भोग और उपभोग के लिए मानने वाले विलासियों को न तो माता और पुत्र का सम्बन्ध स्वीकार है, न आत्मसंयम और अपरिग्रह का पाठ। वे तरह-तरह से पृथ्वी को बरबाद करके उसका सबकुछ लूट लेना

प्रकाश
ज्योतिषम् प्रकाशन-१७/२१ [illegible]
इन्दौर-२ (म.प्र.) / [illegible]-१९९१ / [illegible]

बलवीरसिंह 'करुण'

वैसे तो दृष्टिकोण विशेष गरपट मादलपुरी ने
आत्मविश्वास के साथ कदम रखा है। राजनेताओं को का
परम्परा बहुत पहले से चली आ रही है। इसमें छायावादोत्तर
कवियों ने अनेक प्रबन्ध काव्यों का प्रणयन किया। अनेक राज
हैं। वीरगाथाकाल से लेकर आज तक ये प्रयास निरन्तर जारी
हो गया है कि स्वाधीन भारत में राष्ट्रपिता और आधुनि
नहीं बचा है। तो भी पूज्य महात्मा गांधी, पं. जवाहरलाल
गांधी, श्रीमती कमला नेहरू तथा श्रद्धेय लालबहादुर शास्त्री।
पर प्रबन्ध काव्यों की रचना हो गई है। ये काव्य पूरी तन्मीयत
रघुवीरशरण मित्र, परमेश्वर द्विरेफ, विश्वनाथ दीक्षित 'बटुक'
साधिका जैसे वरिष्ठ रचनाकारों ने यह दायित्व निभाया है।
नाम गरपट मादलपुरी का भी जुड़ गया है। उन्होंने स्वाधीन भा
अटलबिहारी वाजपेयी को अपने खण्डकाव्य (?) का विषय बन
नामक पुस्तक का प्रणयन किया है।

कवि ने अपनी कृति को खण्डकाव्य बताया है परन्तु नि
खण्डकाव्य मानने में संकोच ही होता है। अधिक उपयुक्त होगा कि
एक लम्बी कविता कहा जावे। सर्ग-विभाजन तो इसमें है ही नहीं
८३ तक क्रमांकों के अन्तर्गत इसे लिखा गया है। इन क्रमांकों में
नज़र नहीं आती। कोई कथा-सूत्र भी इस रचना में ढूंढ़ना कठि
के यशस्वी जीवन के अनेक ऐसे महत्वपूर्ण पक्ष हैं जो प्रेरणा के स्रो
अत्यन्त ओजस्वी कवि, सफल पत्रकार, धुरन्धर वक्ता, कुशल संग
राजनेता रहे हैं। जिस ओजस्वी शैली में उन पर काव्य रचा जाना
तक कवि नहीं पहुंच पाया। रामचरित मानस की दोहा चौपाई
को लिया गया है। परन्तु छन्द प्रायः दोषपूर्ण ही हैं। भाषा का
और भी कठिन है। कहीं अवधी, कहीं ब्रज तो कहीं खड़ीबोली
साथ तीनों के दर्शन हो जाते हैं। इन सब दृष्टियों से यह एक सामान्
ठहरती है।

श्रीमती सावित्री प...
पालीवाल भवन, गजाने वालो का
रास्ता, चांदपोल, जयपुर (राज.)

विनोद सोमानी "हंस"
४२/४३ मानसरोवर, जीवनविहार
कॉलोनी, आनासागर सरक्यूलर रोड,
अजमेर-३०५ ००६ (राज)

डॉ. रमाकान्त शर्मा
४०-शांतिनगर,
सिरोही (राज.)

बालमुकुन्द गर्ग
"पुनर्वसु" २६८, विश्व बैंक कॉलोनी (I)
महिदपनिनगर, उज्जैन-४५६ ००१

दिनेशचन्द्र शर्मा
६८-एल आई सी कॉलोनी,
अजमेर-३०५ ००६

रमेशचन्द्र पंत
६२-उत्कर्ष, विद्यापुर,
द्वाराहाट, अल्मोड़ा (उ. प्र.)

सुरेश शर्मा
द्वारा सौरभ स्टोर,
पो. मनासा जि मदसौर (म प्र.)

मदनमोहन परिहार
भाग्य भवन, सरदारपु
जोधपुर-३४२ ००३

कवि
गोः
३
मा
२७/१७६ रे
९८७ कमलाते
होशगाबाद-
डो
रा
र

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

नवीन प्रकाशन

१ **राजस्थान का हिन्दी साहित्य** सकलन पुस्त. म. १५०/-
रिया. ४०/-

इस ग्रन्थ म भारतेन्दु युग मे अद्यतन राजस्थान मे सृजित साहित्य का समावेश किया गया है। सुविधा की दृष्टि से ग्रन्थ को कविता, उपन्यास, कथा, नाटक, आलोचना व विविध विधा खण्डो मे वर्गीकृत किया गया है। सरस्वती उपासकों, शोधार्थियों व विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी।

२. **राजस्थान साहित्यकार परिचय कोश** स डॉ. लक्ष्मीनारायण नदवाना मू २८/-

प्रस्तुत परिचय कोश राजस्थान मे सृजनरत हिन्दी के सृजनधर्मियो के कृतित्व आदि की संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत करता है। अत समकालीन साहित्यकारों व साहित्यकर्म की जानकारी प्राप्त करने हेतु अत्यन्त उपयोगी कृति।

३ **राजस्थान का महिला लेखन एक परिदृश्य** स डॉ. दयाकृष्ण विजय मू १०/-

राजस्थान की प्रबुद्ध लेखिकाओ की समकालीन रचनाधर्मिता से सुधि पाठकों का साक्षात्कार करवाने वाली महत्वपूर्ण कृति।

४ **कविता का व्यापक परिप्रेक्ष्य एक उपनिषद्** स. डॉ. हेतु भारद्वाज पुस्त ८०/-
रिया. २०/-

यह कृति कविता के विभिन्न आयामो से सुधि पाठको का साक्षात्कार करवाने की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। चार शीर्ष कवियों : श्री नन्द चतुर्वेदी, डॉ नन्दकिशोर आचार्य, प्रो. विजेन्द्र एव प्रो. ऋतुराज द्वारा 'कविता' के विभिन्न छुए अनछुए पहलुओ पर गम्भीर चर्चा।

५ **हमारे पुरोधा : परदेशी** स डॉ दुर्गाप्रसाद अग्रवाल पुस्त स. ६२/-
रिया. स. १७/-

स्वतन्त्रता पूर्व के राजस्थान के एक बहुत ही समर्थ, प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार श्री मन्नालाल परदेशी द्वारा सृजित विपुल साहित्य का दिग्दर्शन करवाने वाली कृति।

६ **हमारे पुरोधा सुधीन्द्र . व्यक्ति और कविता** स श्री नन्द चतुर्वेदी पुस्त स ६५/-
रिया. स. १६/-

इस कृति मे डॉ सुधीन्द्र के साहित्यिक जीवन व कृतित्व का श्री चतुर्वेदी ने बड़ा ही सारगर्भित एव प्रेरणादायक चित्रण किया है। हमारे पुरोधा शृखलान्तर्गत प्रकाशित यह कृति स्व डॉ. सुधीन्द्र के साहित्यिक अवदान से नयी पीढ़ी को साक्षात्कार करवाने की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

— अकादमी प्रकाशन सूची प्राप्त कीजिये।

डॉ ... नन्दवाना, सचिव, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा
श्री ललित टण्डन, महावीर प्रिन्टिंग प्रेस, उदयपुर द्वारा मुद्रित।